

**TEXT CROSS
WITHIN THE
BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182035

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H82/B57V Accession No. G.H. 1422

Author भट्ट नारायण ।

Title वेणी-संहार । 1939

This book should be returned on or before the date last marked below.

वेणी-संहार

[कविवर भट्टनारायण-विरचित नाटक का
गद्यपद्यात्मक अनुवाद]

अनुवादक

श्री हरदयालुसिंह

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१८३८

Published by
K. Mittra,
at The Indian Press, Ltd.,
Allahabad.

Printed by
A. Bose,
at The Indian Press, Ltd.,
Benares-Branch.

अनुक्रमणिका

संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
अ—भूमिका—		
१—	भट्टनारायण का काल-निर्णय और वेणी- संहार की रचना ...	१
२—	नाटकीय विवेचन ...	४
३—	रस-निरूपण ...	१०
४—	वृत्ति ...	१२
५—	आलोचना ...	१३
६—	काव्य-सौंदर्य ...	१५
७—	कथा-परिचय ...	२०
८—	पात्र-परिचय ...	३७
९—	पात्र ...	५५
ब—	नाटक का अनुवाद ...	१
स—परिशिष्ट—		
१—	छन्द-परिचय ...	१५६
२—	छन्दों की प्रतीकानुक्रमणिका ...	१६०
३—	शब्दार्थ-दीपिका ...	१७३

भूमिका

१ — भट्टनारायण का काल-निर्णय

कविवर भट्टनारायणजी का आविर्भावकाल बाण, दण्डी और भवभूति के अनन्तर माना जाना चाहिए। बङ्गाल में यह बात बहुत ही प्रसिद्ध है कि भट्टनारायण कान्यकुब्ज-निवासी शाण्डिल्य गोत्री ब्राह्मण थे। बङ्गाल में आज भी इनके वंशज (सन्याल) पाये जाते हैं। इन्हें आदि सूर ने कन्नौज से बुलाकर बङ्गाल में बसाया था और पाँच ग्राम दिये थे। अबुलफ़ज़ल के मतानुसार, बल्लालसेन से बाईसवीं पीढ़ी पूर्व आदिसूर का जन्म हुआ था और बल्लालसेन तेरहवीं शताब्दी में बङ्गाल में शासनसूत्र सञ्चालन करते थे। इन बाईस मध्यवर्ती राजाओं ने अनुमानतः तीन सौ वर्ष राज्य किया होगा। इस गणना के अनुसार वेणीसंहार की रचना सातवीं या आठवीं शताब्दी के लगभग हुई थी। क्योंकि इसकी वर्णनशैली में बाण, दण्डी, और भवभूति की भाषा का आभास मिलता है। महामना विलसन महोदय इसी मत के समर्थक हैं।

भट्टनारायण पञ्चगौड़ों के वंशज थे। विश्वकवि श्रीयुत रवीन्द्र-नाथ टैगोर इसी वंश की विभूति हैं। आदिसूर ने इन्हें पञ्चग्राम दिये थे। कालान्तर में इनकी संख्या इतनी बढ़ गई और भट्टनारायण

एक राजवंश के प्रवर्तक बन गये। इसका विशद वर्णन “क्षितिश-वंशावली-चरित” में दिया गया है। कई किंवदन्तियाँ भी इसी मत की समर्थक हैं। “वेणीसंहार” के रचयिता यही भट्टनारायण थे। महाभारत में पञ्चग्राम-याचना की कथा भट्टनारायण के जीवन की पञ्चग्राम-प्राप्ति की घटना से सम्बन्धित है। यह भी हमारे मत का समर्थन करती है।

“वेणीसंहार” के छठे अङ्क में “चार्वाक” का उल्लेख किया गया है, परन्तु यह एक प्रकार से बुद्ध भगवान् की ओर सङ्केत करता है। यदि “क्षितिजवंशावली-चरित” का प्रमाण ठीक माना जाय तो भट्टनारायण का आविर्भावकाल सप्तम शताब्दी के उत्तरार्द्ध में या अष्टम शताब्दी के पूर्वार्द्ध में माना जायगा अर्थात् भट्टनारायण भवभूति के समकालीन थे या इनसे कुछ पीछे हुए थे।

ग्रिल महोदय का मत है कि भट्टनारायण छठी या सातवीं शताब्दी में हुए होंगे। प्रोफ़ेसर मोक्षमूलर का कथन है कि यह बाणभट्ट के किसी मित्र के समकालीन थे, या वह यही भट्टनारायण हों जिनका उल्लेख हर्षचरित्र में किया गया है। कर्निघम महोदय के मतानुसार बंगाल में सेन-वंश सन् ६५० से लगाकर ११०८ तक राज्य करता रहा और आदि सूर नैपालाधीश्वर अंशुवर्मा के समकालीन थे जिनका राज्य-काल ६३७ से ६४२ तक माना जाता है। अतः सेनवंश के प्रथम सम्राट् आदि सूर सप्तम शताब्दी में हुए होंगे। और कान्यकुब्ज ब्राह्मण इन्हीं के राज्यकाल में बङ्गाल से आकर बसे होंगे। इन्हीं कारणों से यह मंतव्य अधिक समीचीन प्रतीत होता है कि इस नाटक की रचना

या तो सप्तम शताब्दी की पराद्ध में अथवा अष्टम शताब्दी के पूर्वाद्ध में हुई होगी ।

कतिपय बाह्य प्रमाणों से भी इसी मत का समर्थन होता है । काव्य-प्रकाशकार श्री मम्मटाचार्य का काल ११५० से १२५० तक माना जाता है । इन्होंने अपने काव्यप्रकाश में “वेणीसंहार” के बहुत से श्लोकों को उदाहरण रूप में उपस्थित किया है । धाराधीश श्री भोजराज का काल सन् १०७० के लगभग माना जाता है । उन्होंने भी अपने सरस्वती-कण्ठाभरण में “वेणीसंहार” के श्लोकों को उद्धृत किया है । धनजय दसवीं शताब्दी के मध्य में हुए थे । इन्होंने अपने दर्शरूपकावलोक में इसी नाटक के श्लोकों के उदाहरण दिये हैं । श्रीयुत आनन्दवर्द्धनाचार्य काश्मीराधीश अवन्तिवर्मा के समकालीन थे जिनका राजत्वकाल ८५५ से लेकर ८६४ तक माना जाता है । इन्होंने भी अपने ध्वन्यालोक में वेणी-संहार के श्लोक उद्धृत किये हैं । वामनाचार्य अष्टम शताब्दी के मध्य में हुए थे । इन्होंने अपनी अलंकार-सूत्र-वृत्ति में इस नाटक के श्लोक उदाहरण के रूप में उद्धृत किये हैं ।

इन सब बाह्य प्रमाणों का यही निष्कर्ष निकला कि वेणीसंहार की रचना या तो सप्तम शताब्दी के पराद्ध में हुई होगी या अष्टमशताब्दी के पूर्वाद्ध में ।

२—नाटकीय विवेचन

काव्य

काव्य पद की अद्वावधि कोई सुन्दर परिभाषा रीति-ग्रंथों में उपलब्ध नहीं है। यों तो प्रायः किसी भी विषय पर विद्वानों का मतैक्य कम होता है, परन्तु काव्य पद की परिभाषा पर विद्वान् लोग विशेष रूप से भिन्न मत रखते हैं। काव्यकानन-पञ्चानन श्रीयुक्त मम्मटाचार्य जी का मत है कि—

“तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि।”

महामति विश्वनाथ जी अपने साहित्य-दर्पण में “वाक्यम् रसात्मकम् काव्यम्” को ही काव्य का लक्षण बतलाते हैं। और पण्डितराजजगन्नाथ जी—“रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।” को ही काव्य की परिभाषा समझते हैं। इसी प्रकार अन्य साहित्य-महारथी अपने-अपने मतानुसार काव्य पद की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ बनाते हैं। इनमें से किन महानुभाव का मत ग्राह्य है और किनका अग्राह्य इसका निर्णय करना बड़ा कठिन है।

नाटक

नाटक काव्य का एक मुख्य अङ्ग है। यह दृश्य काव्य श्रव्य काव्य के समान ही उपयोगी है। श्रव्य काव्य सहृदय पण्डितों के

ऊपर ही अपना प्रभाव डालता है, परन्तु दृश्य काव्य सामान्य मनुष्यों के हृदय-पटल पर भी अपनी मुद्रा अंकित करता है। संस्कृत-साहित्य में दृश्य काव्य को **नाटक या रूपक** कहते हैं। इसमें कल्पित पात्र राजाओं अथवा अन्य व्यक्तियों का रूप धरके उनके कार्य-कलापों का अनुकरण करते हैं। इस क्रिया को अभिनय कहते हैं। अभिनय करते समय अभिनेता दर्शकों के समक्ष पात्र की मानसिक अवस्थाओं और विकारों का स्पष्ट रूप से दिग्दर्शन कराता है। अभिनय चार प्रकार का होता है—१ आङ्गिक, २ वाचिक, ३ आहार्य, ४ सात्त्विक। आङ्गिक अभिनय में अभिनेता नाटकीय पात्र के कार्य-कलापों का अनुकरण अपने शरीर के द्वारा, वाचिक में वचन-रचना के द्वारा, आहार्य में वेष-रचना के द्वारा और सात्त्विक में रसादिकों के द्वारा स्तम्भ स्वेद वैवर्णादिक होने से कराता है।

नाट्यशास्त्रकारों ने रूपक के दस भेद और उपरूपक के अठारह भेद बतलाये हैं। रूपक के भेद इस प्रकार हैं—१ नाटक, २ प्रकरण, ३ भाण, ४ प्रहसन, ५ डिम, ६ व्यायोग ७ समवकर, ८ वीथी, ९ अंक, १० ईहामृग।

परन्तु अलंकारशास्त्रियों ने दृश्यकाव्य में १ वस्तु, २ नेता, ३ रस, इन तीन ही को प्रधानता दी है। अन्य बातों को वे लोग गौण समझते हैं।

रूपक का इतिवृत्त वस्तु कहलाता है। यह दो प्रकार का होता है—१ अधिकारिक, २ प्रासंगिक।

अधिकारिक वस्तु वह है जिसमें घटनाओं का सम्बन्ध मुख्य नायक से हो।

१—स्नेहगर्भित व्यापार से ।

२—श्लिष्ट अथवा चातुर्यपूर्णा क्रिया से ।

३—वाक्य का अर्थान्तर करके किसी अन्य कार्य के निश्चय से ।

४—मुख्य परिणामदर्शक श्लेषगर्भित युक्तियों से ।

पताका स्थान का मुख्य उद्देश्य यह होता है कि यह वर्णित वस्तु में लोकोत्तर चमत्कार उत्पन्न कर दे ।

रंगमंच पर जिन बातों का अभिनय न करके केवल सूचना दी जाती है वे सूच्य वस्तु कहलाते हैं । सूच्य वस्तु पाँच प्रकार का होता है — १ विष्कम्भक, २ प्रवेशक, ३ चूलिका, ४ अङ्गमुख, ५ अङ्गावतार ।

भूतपूर्व और भावी घटनाओं की संक्षिप्तरूप से जहाँ सूचना दी जाय उसे विष्कम्भक कहते हैं ।

उभय अङ्कों के मध्य में भूतपूर्व अथवा भविष्य में होनेवाली बातों की छोटे छोटे पात्रों द्वारा जिसमें सूचना दी जाय उसे प्रवेशक कहते हैं ।

नेत्र्य से सूचना देना चूलिका कहलाती है ।

अङ्ग में वर्णन की हुई बातों के हेतु की सूचना जिसमें मिलती है उसे अङ्गमुख कहा जाता है ।

जब अङ्ग के अन्त में आगामी अङ्ग की होनेवाली बातों की सूचना दी जाती है तो उसके अनुसार आगामी अङ्गारम्भको अङ्गावतार कहते हैं ।

नाटक में वर्णित वस्तु के आरम्भ के पूर्व दी हुई भूमिका के पूर्व-रंग, प्ररोचना और प्रस्तावना कहते हैं ।

सूत्रधार के द्वारा अभिनय की निर्विघ्न शान्ति के लिए प्रार्थना को पूर्वरङ्ग कहते हैं। पूर्वरङ्ग के वाईस अङ्ग होते हैं जिनमें नान्दी मुख्य है।

नाटकारम्भ में सूत्रधार इष्टदेव, ब्राह्मण अथवा नरेश्वर की जो वन्दना करता है उसे नान्दी कहते हैं। यह मङ्गलाचरण का रूपान्तर है।

नान्दी के अनन्तर सूत्रधार वस्तु नाटक प्रणेता एवं सन्दर्भ की प्रशंसा द्वारा दर्शकों का ध्यान जब अभिनय की ओर आकर्षित करता है तब उसे प्ररोचना कहते हैं।

इसके अनन्तर सूत्रधार नटी पारिपाश्वर्क से पात्रों के प्रवेशादि के विषय में जो कालोचित वार्तालाप करता है उसे प्रस्तावना या आमुख कहते हैं।

नाट्यशास्त्र में वर्णित वस्तु के फलों को भोग करनेवाले पात्र को नायक कहते हैं। नायक तीन प्रकार के होते हैं। १ दिव्य २ अदिव्य ३ दिव्यादिव्य। स्वभावानुसार नायक के चार भेद होते हैं—१ धीरोदात्त, २ धीरोपम, ३ धीरललित, ४ धीरप्रशान्त।

नायक की स्त्री को नेत्री या नायिका कहते हैं। इसके तीन भेद हैं—१ स्वकीया, २ परकीया, ३ सामान्या।

स्वकीया के तीन भेद होते हैं—१ मुग्धा, २ प्रगल्भा, ३ मध्या। परकीया के आठ भेद हैं—१ ऊढ़ा, २ अनूढ़ा, ३ गुप्ता, ४ विदग्धा, ५ कुटिला, ६ लक्षिता, ७ अन्श्याना, ८ मुदिता। सामान्या के दो भेद हैं—१ जननीआधीना, २ स्वतन्त्रा। मुग्धा के फिर दो भेद होते हैं—१ अज्ञात-यौवना, २ ज्ञातयौवना।

मव्या के तीन भेद होते हैं—१ धीरा, २ अधीरा, ३ धीराधीरा ।
प्रगल्भा के दो भेद होते हैं—रतिप्रीता, २ आनन्दसम्मोहिता । इस प्रकार
नायिकाओं के अनन्त भेद हैं ।

इनके अतिरिक्त नाटक में उपनायक, सूत्रधार, नट, नटी, विदूषक,
पीठमर्द, विट और चेट की भी आवश्यकता होती है ।

नायक के प्रबल प्रतिद्वन्द्वी को उपनायक कहते हैं । यह वीररस-
प्रधान नाटकों में ही होता है ।

३—रस-निरूपण

काव्य के पठन अथवा श्रवण या अभिनय-दर्शन से जो अलौकिक
आनन्द उत्पन्न होता है उसे रस कहते हैं । रस की उत्पत्ति काव्य में
वर्णित मनोविकार या भाव से होती है जिसका अन्भव पाठक या
श्रोता या दर्शक के हृदय में होता है,—इस प्रकार रस के
आधार भाव हैं ।

भाव दो प्रकार के होते हैं—१ स्थायी भाव, २ सञ्चारी भाव ।

जो भाव मन में बहुत देर तक रहकर उसे तन्मय कर देते हैं और
जो इस प्रकार रस बन जाते हैं वे स्थायी भाव कहलाते हैं ।

जो भाव मन में थोड़े समय तक उत्पन्न होकर चले जाते हैं वे
सञ्चारी भाव कहलाते हैं ।

इन दो प्रकार के भावों के अतिरिक्त रस की उत्पत्ति के लिए
विभाव और अनभाव की आवश्यकता होती है ।

रस की उत्पत्ति और उद्दीपन के कारणों को विभाव कहते हैं ।
इनके दो भेद होते हैं १ आलम्बन, २ उद्दीपन ।

जिसके कारण स्थायी भाव की उत्पत्ति होती है उसे आलम्बन कहते हैं । जैसे शृङ्गार में प्रेमपात्र, करुणा में मृतव्यक्ति, रौद्र में शत्रु इत्यादि ।

ऐसी परिस्थिति, जो उत्पन्न हुए स्थायी भाव को उद्दीप्त या तीव्र करे उसे उद्दीपन कहते हैं । जैसे—शृङ्गार में सुन्दर प्राकृतिक दृश्य, वसन्त और सङ्गीत, हास्य में हास्योत्पादक व्यक्ति की चेष्टाएँ, वीर में मारू बाजा अथवा चारणों का बढ़ावा इत्यादि ।

आन्तरिक मनोभाव को बाहर प्रकट करनेवाली शारीरिक चेष्टाओं को अनुभाव कहते हैं । जैसे मुख खिलना, भुजा फड़कना, काँपना, रुदन, आँखें लाल होना इत्यादि ।

“वेणीसंहार” वीररसप्रधान नाटक है । इसमें अन्य रसों का समावेश गौण रूप से किया गया है । प्रथम अङ्क वीर रस से आरम्भ होता है । द्वितीय अङ्क में शृंगार रस का वर्णन है । इसमें दुर्योधन और भानमती का संभोग-शृंगार वर्णन किया गया है । अलंकारशास्त्रियों के मत से इस स्थल पर शृंगार रस का वर्णन नितान्त अनुचित है, दुर्योधन का समर व्यापार को छोड़कर प्रमदारत्न के प्रणय-पाश में आबद्ध होना अस्वाभाविक है । इसके उत्तर में यह निःसंकोच भाव से कहा जा सकता है कि अभिमान के धनी दुर्योधन को अपनी सामरिक शक्ति पर इतना अटल विश्वास था कि वह स्वप्न में भी अपनी पराजय की सम्भावना नहीं रखता था । कवि ने यहाँ पर यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि परम बलशाली नरेश्वर को अपने तुच्छ शत्रु से भी सदा सतर्क और सुशंकित रहना चाहिए, शत्रु की उपेक्षा का परिणाम बड़ा ही भयंकर होता है ।

तृतीय अङ्क में राक्षस-राक्षसी के प्रकरण में बीभत्स, अश्वत्थामा के शोक में करुण और क्रोध में रौद्र रस दिखलाया गया है। चौथे अङ्क में विकटवेपी वृकोदर के दर्शन से सुन्दरक के हृदय में भय उत्पन्न होने के कारण भयानक रस और अर्जुन तथा वृषसेन के संग्राम में वीर रस की धारा प्रवाहित की गई है।

पंचम अङ्क में धृतराष्ट्र और गान्धारी के हृदय में एकाकी दुर्योधन को देखकर शोक उत्पन्न होने से करुण रस है। और षष्ठ अंक में चार्वाक के द्वारा भीम-निधन का दुःख-संवाद सुनकर युधिष्ठिर के मन में अकस्मात् आश्चर्य उत्पन्न होने से अद्भुत रस है।

हास्य रस के समावेश का इसमें अवसर ही नहीं। शान्त रस नाटक में होता ही नहीं, क्योंकि इसका अंकित करना नितान्त असम्भव है। शान्त रस के स्थान पर देवविषयक रतिभाव का वर्णन कवि ने बड़ी सुन्दरता के साथ किया है। उदाहरण के लिए प्रथम अङ्क के छन्द नं० १, २, ३ व, २३ को देखिए।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि वेणीसंहार में साहित्यिक सामग्री की पुष्ट पर्याप्त परिमाण में उपलब्ध है।

४-वृत्ति

अलंकारशास्त्रियों ने गौड़ी, पांचाली और वैदर्भी नाम की तीन ही वृत्तियों का उल्लेख किया है। परन्तु नाट्यशास्त्रियों ने चार प्रकार की वृत्तियों का विधान किया है। इनके नाम हैं १ कौशिकी, २ सात्वती, ३ आरभटी, ४ भारती।

कौशिकी वृत्ति शृंगार रस की पोषिका है। इसमें नायक और नायिकाओं की शृंगारगर्भित चेष्टाओं का वर्णन किया जाता है।

सात्वती वृत्ति वीर रस का पोषिका है। इसमें पराक्रम, दया, दान्तिगुण आदिकों का वर्णन होता है। यह शृंगार रस प्रतिकूल नहीं।

आरभटी वृत्ति रौद्र रस को पोषिका है। इसमें रोष, युद्ध, घात, द्वन्द्व आदि का वर्णन होता है।

भारती वृत्ति—इसका प्रयोग प्रायः सभी रसों में किया जा सकता है।

५—आलोचना

नाटकीय कथा का उपसंहार इस प्रकार है। इनमें से कुछ चित्रों के अंकित करने में ग्रन्थकार ने अपने नाट्यकला-पाठव एवं कवित्व-शक्ति का सुन्दर परिचय दिया है। इस नाटक की आख्यायिका पौराणिक है, परन्तु इसमें नाटकीय सौंदर्य प्रदान करने के लिए कवि ने यथेष्ट हेर-फेर भी किया है। इस सम्वन्ध में महामना प्रोफेसर विलसन का मत है कि “इसका नाटकीय रूप सुन्दर नहीं है। इसका अधिकांश साम्यवाद के रूप में है और इसमें जटिलता भी अधिक आ गई है।” परन्तु इसका दोषारोपण नाटककार की क्रिया-कुशलता पर नहीं किया जा सकता। हाँ, उनके विषय-निर्वाचन पर लांछन लगाया जा सकता है। कवि ने इस छोटे से नाटक में विषय-बाहुल्य का समावेश करने की चेष्टा की है। इसमें एक-एक दृश्य पाण्डवों और द्रौपदी का अंकित करना चाहिए था, जिससे पाठकों को द्रौपदी

के साथ सहानुभूति होती, या धर्मराज के आदर्श चरित्र का ही सुन्दर चित्रण किया गया होता ।

तृतीय और चतुर्थ अङ्क कथा से बहुत सम्बन्धित नहीं हैं । चतुर्थ अङ्क में सुन्दरक के द्वारा जो जो युद्ध का वर्णन कराया गया है वह आवश्यकता से अधिक लम्बा है । यदि यह न होता तो भी कुछ हानि न होती । भिन्न भिन्न दृश्य मुख्य कथा से भली भाँति सम्बन्धित नहीं हैं । धर्मराज और द्रौपदी ऐसे कथा के प्रधान पात्र बहुत पीछे पड़े हुए हैं । इससे यह भी प्रतीत नहीं होता कि नाटक के नायक धर्मराज हैं अथवा भीमसेन ।

परन्तु भीमसेन ही को नायक मानना अधिक समीचीन प्रतीत होता है, क्योंकि यही द्रौपदी की वेणी बाँधने की शपथ खाते हैं । इन्हीं से द्रौपदी अपने नूतन अपमान की कथा कहती है परन्तु जिस प्रकार कथानक की रचना की गई है उससे यही प्रतीत होता है कि धर्मराज नायक माने जा सकते हैं । परन्तु ऐसा करने के लिए नायक और नायिका दोनों ही का चरित्र-चित्रण विशद रूप से किया जाना चाहिए था ।

द्रौपदी का उल्लेख प्रथमाङ्क में किया गया है और फिर अन्तिम अङ्क में । मध्यवर्ती अङ्कों में कहीं उसका नाम भी नहीं दिखलाई पड़ता । नाटक में ऐसे वर्णन नहीं मिलते जो पाठकों की सहानुभूति को उसकी ओर आकर्षित कर सकें । इसके विरुद्ध यदि शकुन्तला, मालती-माधव, और उत्तररामचरित का अध्ययन किया जाय तो पता लगेगा कि शकुन्तला, मालती और सीता तीनों ही हमारे सामने हैं और उनके साथ पाठकों के सहानुभूति उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है, और ज्यों-

ज्यों उनके ऊपर आपत्ति की घटाएँ घिरने लगती हैं त्यों त्यों हम उनके दुःखद परिणामों को जानने के लिए उत्सुक हो जाते हैं । कवि ने द्रौपदी के साथ यह दिखलाकर अवश्य न्याय किया है कि भीम के मरण का समाचार पाकर वह स्वयं मरने के लिए तैयार होती है, परन्तु उसके साथ ही साथ उन्होंने छूटे अङ्क में चार्वाक को मञ्च पर लाकर धर्मराज के चरित्र-चित्रण पर आघात किया है । यद्यपि इसके चित्रण में उन्होंने अपनी नाट्य-कुशलता का परिचय दिया है, परन्तु यह बड़ा ही भद्दा हो गया है । क्योंकि अलङ्कार-शास्त्र के विधान के अनुसार धीरोदात्त नायक का परिहास कराना मानों प्रत्यक्ष रूप से रसाभास का उदाहरण देना है ।

इस नाटक में विदूषक के न होने से हास्यरस की सामग्री का एक प्रकार से अभाव सा है । इसका कारण कदाचित् यह हो कि इसका विषय हास्यरस के अनुकूल नहीं है ।

इनके अतिरिक्त इसमें न तो प्राकृतिक दृश्य ही है और न पात्रों का सुन्दर तुलनात्मक विवेचन है, जैसा कि हम कालिदास और भव-भूति की रचनाओं में पाते हैं । यद्यपि वीररस के वर्णन में कवि ने भवभूति का अनुकरण किया है परन्तु वह इसमें कृतकार्य नहीं हुआ ।

६—काव्य-सौंदर्य

इसकी शैली यद्यपि ओजस्विनी है, तथापि वह इतनी परिष्कृत नहीं है । विचारों में भी कवित्व उपलब्ध है परन्तु वह काल्पनिक कवित्व न होकर उद्गारपूर्ण कवित्व है । इस नाटक में करुण, वीर, रौद्र और

भयानक रसों का सुन्दर समावेश है, परन्तु वे आवश्यकता से अधिक बढ़ गये हैं। करुण असह्य हो जाता है और भयानक बीभत्स हो जाता है। पात्रों का व्यक्तित्व इस नाटक की विशेषता है। उदाहरण के लिए भीम की भयंकरता, कर्ण का अभिमान, अश्वत्थामा का क्रोध एवं दया पूर्ण चित्तवृत्ति और दुर्योधन की अभिमान-पूर्ण स्वार्थपरायणता पर्याप्त होंगे। इनका वर्णन कवि ने बड़ी सुन्दरता के साथ किया है।

जिस प्रकार शकुन्तला नाटक का चतुर्थीक अपने नाटकीय सौंदर्य के लिए विख्यात है, वैसे ही वेणीसंहार का तृतीय अंक है। इसमें भट्टनारायण के नाटकीय कौशल एवं कवित्व-शक्ति का पूर्ण परिचय प्राप्त होता है। यह आद्योपान्त सुन्दर है। इसका संगीतमय वर्णन इसके सर्वथा अनुकूल है, और इसका प्रभाव भी बड़ा अच्छा पड़ता है। इसमें हमें व्यक्तिगत उद्गारों के बड़े ही सुन्दर उदाहरण मिलते हैं, जो इस समय परिस्थिति एवं काल तथा कार्य के अनुसार अपना प्रभाव अलग अलग प्रदर्शित करते हैं।

अश्वत्थामा की उक्ति से वीरता प्रकट होती है। जब वह कौरवी सेना को युद्धक्षेत्र से विमुख हुई देखता है तब बड़े खेदजनक विचार प्रकट करता है। और जब वह अपने अपमान के कारण राजबन्धु को सहायता करने में असमर्थ होता है तब शोक प्रकट करता है। इसमें अश्वत्थामा के चरित्र की विशेषता बढ़ गई है। वास्तव में अश्वत्थामा का चरित्र-चित्रण करने में भट्टनारायण ने अपने नाटकीय कला-पाठ्य का पूर्ण परिचय दिया है।

द्रौणि का पितृ-अनुराग उच्चकोटि का है। वह अपने स्वामी के साथ भी पर्याप्त सहानुभूति रखता है, कर्ण के द्वारा अपमानित होने पर उसके हृदय में भयंकर क्रोधाग्नि प्रज्वलित होती है। इसका कारण यह भी था कि वह अपने पिता की तिरस्कृत मृत्यु से खिन्न भी था।

प्रथम, द्वितीय और तृतीय अंक के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता। वे सब कवि की कल्पना के परिचायक हैं, यद्यपि वह कला बहुत उच्च-श्रेणी की नहीं है। द्वितीय अङ्क में दुर्योधन और भानुमती का सम्मेलन और पञ्चम अंक में धृतराष्ट्र, गान्धारी और दुर्योधन का सम्मेलन कराने में कवि ने बड़ी कुशलता से काम लिया है। यह उसके मस्तिष्क की उपज है।

पञ्चम अङ्क में करुण रस बड़ी सुन्दरता के साथ दिखलाया गया है। धृतराष्ट्र और गान्धारी के शोक को कवि ने बड़ी सफलता से दिखलाया है। गान्धारी के हृदय में कितना प्रगाढ़ मातृ-स्नेह था, इसका पता निर्दिष्ट प्रकरण के अध्ययन से लगेगा। दुर्योधन सहसा संग्राम के लिए उद्यत होता है, भाग्य उसके सर्वथा प्रतिकूल है फिर भी वह अपने माता-पिता का नीतिपूर्ण सत्वरामश मानने को तैयार नहीं। इसका चित्रण कवि ने बड़ी सफलता के साथ किया है। तृतीय और पञ्चम अङ्क की अपेक्षा द्वितीय अङ्क की रचना उत्कृष्ट नहीं है। कंचुकी के द्वारा बड़ी सुन्दर उक्तियाँ कहलाई गई हैं। भानुमती आदर्श हिन्दू-रमणी के रूप में अंकित की गई है। वह अपने पति एवं उसके भ्राताओं पर आनेवाली आपदाओं के विचारों से एक ओर चिन्तित है,

दूसरी ओर उसके पति देव उनकी कोई चिन्ता नहीं करते। ऐसे वर्णन कथानक के सौन्दर्य का संवर्धन करते हैं।

भट्टनारायण का चरित्र-चित्रण भवभूति जैसा सुन्दर नहीं है। लगभग सभी पात्रों के चरित्र-चित्रण में कोई न कोई त्रुटि रह गई है। धर्मराज और द्रौपदी की अपेक्षा भानुमती और दुर्योधन का चरित्र बड़ी सुन्दरता के साथ अंकित किया गया है। भीम का चरित्र-चित्रण करने में भी कवि ने अपना नाटकीय कौशल प्रदर्शित किया है। भयंकरता और क्रोध दोनों ही भीम के चरित्र के मूल अङ्ग हैं। परन्तु यह दोनों ही सकारण हैं। कौरवों ने उन्हें आवश्यकता से अधिक कष्ट दे रखे थे, और दुर्योधन कृष्ण के केशाम्बराकर्षण के द्वारा उसका दारुण अपमान करके भीम के ज्वलंत क्रोधाग्नि में मानों आहुति डाल चुके थे। ऐसी दशा में यदि वह दुःशासन के वत्सःस्थल के कोष्ण रुधिर पान का बीभत्स व्यापार कर बैठे तो इसमें कौन सी आश्चर्य की बात है।

प्रथम अङ्क के आरम्भ से ही हम देखते हैं कि भीम की प्रतिकार-परायणता ने दृढ़तापूर्वक स्थान प्राप्त कर लिया है और उसके आवेग में प्रत्येक विलम्ब के कारण से उत्तरांतर कोप-वृद्धि होती जाती है। वास्तव में भीम का चरित्र इसी रूप में चित्रित किया जा सकता था। कवि ने बड़ी कुशलता के साथ भीम के शरीर में राक्षस का प्रवेश कराके मानो उन्हें रुधिर-पान के बीभत्स-व्यापार से निमुक्त कराया है।

दुर्योधन कितना अभिमानी कितना विलासप्रिय, कितना अविचारी और कितना उत्तेजना-पूर्ण है। अंक के आरम्भ में उसने जो अपने माता-पिता को उत्तर दिया है वह सर्वथा दुर्योधन ऐसे स्वाभिमानी वीर

के लिए उचित है। उसका पक्ष बिल्कुल गिर गया और भविष्य में उसे सफलता की कोई आशा तक नहीं रह गई तथापि वह किसी भी प्रतिबन्धक पर शत्रुओं से सन्धि स्थापित करने के लिए प्रस्तुत नहीं। कर्ण के निधन से उसकी अंतिम आशालता पर तुपारपात हो चुका था। जब मनुष्य निराश हो जाता है तब उसके हृदय में अपूर्व साहस का उदय होता है, परन्तु हम देखते हैं कि दुर्योधन कदाचित् निराशा के मारे ही व्यास-सरोवर में जा छिया था। इससे उसकी निर्लज्जता-पूर्ण कायरता की ओर संकेत होता है, परन्तु यह भीरुता भी अल्पकालिक है, और वह घोर संग्राम करके युद्ध में वीरतापूर्वक गिरता है, यही इस हतभागे सद्भाट् के जीवन की अंतिम झलक है।

धर्मराज के चरित्र-चित्रण में कुछ त्रुटि है, परन्तु साथ ही साथ उसमें गौरव भी है। वे वंश-विघातक संग्राम को नहीं होने देना चाहते, क्योंकि वे उसके दुष्परिणाम से भली भाँति परिचित हैं। पंचग्रामों की याचना से संतुष्ट रहना युधिष्ठिर ऐसे उदारचरित्र महानुभाव का ही कर्म था। उनका अपूर्व सत्य, उच्चकोटि की युद्धप्रियता, लोकोत्तर भ्रातृप्रीति और भगवान् कृष्ण में निर्व्यूढ भक्ति उनके चरित्र के मुख्य अंग हैं।

भट्टनारायण अपूर्व प्रतिभा-सम्पन्न कवि थे। उनकी भाषा नाटकीय पात्रों के सर्वथा अनुकूल है। बहुत से छन्दों में अपूर्व संगीत है, और वह भी रस के सर्वथा अनुकूल है। वर्णनात्मक दृश्यों में उनकी शैली बड़ी ओजमयी है तथा अन्य वर्णनों में बड़ी परिमार्जित और प्रांजल है। यद्यपि इनके काव्य में कालिदास और भवभूति जैसी

उच्चकोटि की कल्पना नहीं है तथापि उनमें बड़े सुन्दर सुन्दर विचारों का समावेश है।

तत्कालीन आलोचकों का विचार था कि सुदीर्घ गुम्फित समस्त पदों के प्रयोग से गद्य में ओज आ जाता है।

यह मत काव्यादर्शकार आचार्यप्रवर दण्डी का है। कदाचित् इसी मत के अनुसार भट्टनारायण ने चतुर्थ अंक में लम्बे-लम्बे समासों की झड़ी लगा दी है।

कहीं-कहीं विचारों की पुनरावृत्ति हो गई है। इनकी शैली में श्लेषों की भरमार नहीं है, जैसा कि इनके पूर्ववर्ती भास आदिक तथा उत्तरवर्ती अन्य कवियों की रचनाओं में पाया जाता है। निष्कर्ष यह कि वेणीसंहार में प्रचुर परिमाण में सुन्दर विषय का समावेश है।

७—कथा परिचय

वेणीसंहार नाटक की कथा महाभारत से ली गई है। वह वीर रस-प्रधान है। महाभारत के समा पर्व के उत्तरार्ध में इसकी कथा इस प्रकार कही गई है—

पाण्डवों ने बड़े समारोह के साथ राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान किया। इसमें प्रायः बहुत से स्वपक्ष-समर्थक राजमंडल एवं आत्मीयजन बुलाये गये थे। कौरव-राज दुर्योधन जब राजमंदिर में आने लगे तो एक विशेष घटना हुई। मंदिर के अंतर्गत भूभाग को रचना ऐसे ढङ्ग से की गई थी कि जहाँ वास्तव में स्थल था वहाँ जल की भ्रान्ति होती

थी और जहाँ पर जल था वहाँ पर स्थल मालूम होता था । समागत राजाओं का स्वागत करने के लिए मुख्य द्वार पर भीमसेन खड़े हुए थे । जब दुर्योधन आने लगे तो वे स्थल की ओर चले जहाँ वास्तव में जल था । भीम ने उनके बहुत रोका परन्तु अपने कुटिल स्वभाव-वश उन्होंने जाना कि मेरा परिहास करने के लिए यह मुझे जलमार्ग में होकर आने का परामर्श देता है । इस विचार से कौरवराज, भीमसेन की अवज्ञा करके, आगे बढ़ गये । ज्योंही आगे बढ़े त्योंही अगाध जल में डूबने लगे । दुःशासन भी पीछे से फाँद पड़ा और उन्हें जल से बाहर निकाल लाया । भीम ने धीरे से कहा कि जब इनका पिता अन्धा है तो क्या यह अन्धे न होंगे । यह कहते कहते उन्हें हँसी भी आ गई ।

राजसौध से पांचालराज-तनया भी इस दृश्य को देख रही थी । उसने अपनी सहचरी से कहा कि मैंने समझा था कि वंशपरम्परा यहाँ से बदल गई; परन्तु नहीं, वास्तव में यह मेरा प्रमाद था । अन्धे के अन्धा ही होता है । द्रौपदी का यह विकट परिहास दुर्योधन के कानों में पड़ा । उसका क्रोध-कृशानु भड़का परन्तु फिर भी उसने उसे अपने हृदय में दबा रक्खा, और इस बात का मानसिक संकल्प किया, कि जैसे बन पड़ेगा, इस दारुण अपमान का बदला लूँगा ।

अवसर पाकर दुर्योधन ने अपने मातुल शकुनि और परममित्र कर्ण के परामर्श से पांडवों का सर्वनाश करने का षड्यन्त्र रचा । शकुनि द्यूत-विद्या में बड़ा निपुण था और साथ ही पूरा धूर्त भी था । इधर धर्मराज को भी द्यूत का दुर्व्यसन था, इसलिए कौरवों ने इन्हें दीपमालिका की रात्रि के द्यूत-क्रीड़ा के लिए बुला भेजा ।

दुर्योधन की आंर से शकुनि खेल रहा था। पाँसे ऐसे ढङ्ग से बनाये गये थे कि वे कभी धर्मराज के पक्ष में पड़े ही नहीं, जिसके दुष्परिणाम-स्वरूप धर्मराज अपना राज-पाट, बन्धु-बान्धव एवं द्रौपदी तक को दाँव में लगाकर हार गये।

दुर्योधन को अब अपना कुटिल अभिप्राय पूर्ण करने का अवसर मिला। उसने अन्तःपुर से द्रौपदी को दुःशासन के द्वारा पकड़ मँगाया और भरो सभा में उससे कहा, अरी दासी ! तू अपना उत्तरीय परिधान उतारकर मेरी जङ्घा पर बैठ, इसमें कोई लज्जा की बात नहीं; क्योंकि यह तो अन्धराज की सभा है, इसमें किसी को कुछ नहीं सूझता। यह कहकर उसने दुःशासन को आज्ञा दी कि इसकी साड़ी उतार लो। दुःशासन ने उसको नग्न करने की अत्यन्त चेष्टा की परन्तु भगवान् की कृपा से वह अपने प्रयास में विफल रहा।

कृष्णा का यह दारुण अपमान महाबाहु भीमसेन से न सहा गया। उन्होंने क्रोध में आकर प्रतिज्ञा की कि मैं इस पापी दुःशासन के वक्षःस्थल को विदीर्ण करके इसके काँष्ण रुधिर को पान करूँगा और इसकी दाँतों भुजाओं को उखाड़ डालूँगा। दुर्योधन के लिए उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि गदाप्रहार से इसकी जङ्घा भङ्ग करूँगा। द्रौपदी ने भी यह प्रतिज्ञा की थी कि जब तक दुःशासन के रक्त से मेरे बाल न भीगेंगे तब तक मैं अपनी वेणी कदापि न बाँधूँगी। इस बात पर भीमसेन ने उसे विश्वास दिलाया था कि मैं स्वयं दुःशासन के रक्त से भरे अपने अरुण हाथों से तेरी विकीर्ण वेणी को बाँधूँगा।

इस प्रकार अर्जुन ने कर्ण को, धर्मराज ने शल्य को और सहदेव ने शकुनि को मारने की प्रतिज्ञा की और वन का मार्ग लिया, और बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष की अज्ञातवासावधि समाप्त करके विराटपुर में अपने को प्रकट किया। यहाँ पर अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु का विवाह मत्स्यराज की कन्या उत्तरा के साथ हो गया। इस विवाह में यदव, पाञ्चाल तथा अन्य राजा भी सम्मिलित हुए थे।

विवाह के सानन्द समाप्त होने के अनन्तर आमन्त्रित राजाओं ने परस्पर मिलकर यह निश्चय किया कि अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार पाण्डव वनवास की अज्ञातवासावधि को समाप्त कर चुके हैं, इसलिए दुर्योधन से कहा जाय कि अब इनका राज्य इनको लौटा दें। इस विचार को लेकर पाञ्चालराज के पुरोहित हस्तिनापुर गये, परन्तु इसका कोई उचित उत्तर न मिला। तब धर्मराज ने स्वयं भगवान् कृष्ण को दुर्योधन के पास यह सन्देश देकर भेजा कि यदि हम लोगों के निर्वाहार्थ पाँच गाँव तक दे दोगे तो भी हम वंश-विघातक संग्राम में प्रवृत्त न होकर सन्धि कर लेंगे। भगवान् इस सन्धि-सन्देश को लेकर हस्तिनापुर गये। यहीं से हमारी नाट्यकथा का आरम्भ होता है।

प्रथमाङ्क

सूत्रधार नान्दी-पाठ के अनन्तर उपस्थित सज्जनों से निवेदन कर रहा था कि स्वयं भगवान् कृष्ण कौरवों और पांडवों में सन्धि कराने के लिए जा रहे हैं, इससे केवल कुरुवंश का ही लाभ न होगा प्रत्युत विश्वव्यापिनी शान्ति स्थापित हो जायगी। क्रोधकलित भीमसेन

सूत्रधार की इस सदिच्छा को न सह सके और रङ्ग-मञ्च पर आकर उसे फटकारने लगे। इसी समय सहदेव वहाँ आये और भीमसेन को शान्त करने का प्रयत्न करने और कहने लगे कि बन्धुवर ! अब आप अधिक क्रोधित न हों। ज्येष्ठ महाराज कृष्ण भगवान् को इस प्रतिबन्धक पर सन्धि करने के वास्ते कौरवराज के पास भेज रहे हैं कि यदि वह पाँच ग्राम भी हमारे निर्वाहार्थ दे दें, तो भी हम लोग उन्हीं पर सन्तोष करके युद्ध के लिए प्रवृत्त न होंगे। तुच्छ पाँच ग्राम लेकर सन्धि करने का प्रस्ताव सुनकर भीम और भी बिगड़े। इतने ही में वहाँ पर द्रौपदी आ गई। उसकी विकीर्ण वेणी को देखकर भीम के क्रोध और शोक का पारावार न रहा, परन्तु इन भावों को अपने हृदय में दबाकर उन्होंने द्रौपदी से पूछा कि आज तुम इतनी खिन्न क्यों हो रही हो।

द्रौपदी अभी उत्तर न दे पाई थी कि उसकी परिचारिका बोल उठी—महाराज, इनके दुःख का एक विशेष कारण है। आज अन्तःपुर में भानुमती ने इन्हें बहुत कुछ अनुचित बातें कहीं। उनमें सबसे अधिक चोट करनेवाली बात यह थी कि तेरे पाँचों पति अब तो पाँच गाँव की भित्ता लेकर सन्धि करने को तैयार हैं, अब तू अपने बाल क्यों नहीं बाँधती? इसके उत्तर में मैंने कहा कि हमारी महाराणी तभी अपने बाल बाँधेंगी जब तुम लोगों के बाल खुल जायेंगे। इस प्रगल्भ उत्तर को सुनकर भीमसेन को बड़ा आनन्द हुआ और उन्होंने उस दासी को वस्त्राभरण उपहार में दिये, और साथ ही द्रौपदी को विश्वास दिलाया कि मैं दुर्योधन का जङ्घ-भङ्ग

करके और दुःशासन के बाहूत्पाटन करके तुम्हारी विकीर्ण वेणी को उसी के रक्त से भीगे हुए अपने हाथों से बाँधूँगा । द्रौपदी ने हाथ जोड़कर कहा कि प्राणनाथ ! मेरी सारी आशाएँ आप ही की प्रतिज्ञा पर केन्द्रित हैं ।

कई दिनों के अनन्तर भीमसेन को कंचुकी के द्वारा इस बात का पता लगा कि भगवान् कृष्ण भग्नमनोरथ होकर लौट आये, क्योंकि दुर्योधन उनसे किसी प्रतिबन्धक पर सन्धि करने को तैयार न हुआ, प्रत्युत उन्हें बाँधने का प्रयत्न करने लगा । उसकी दुश्चेष्टा देखकर भगवान् ने अपना विराटरूप दिखाकर उसे मूर्च्छित कर दिया और आप लौट आये । इससे धर्मराज को भी बड़ा क्रोध आया और वे कहने लगे कि अब कौरवों के वंशवन को भस्म करने के लिए हमारी क्रोधाग्नि भड़कना ही चाहती है । भीम को यह सुनकर बड़ा सन्तोष हुआ । इतने ही में रणवाद्य बजने लगे । द्रौपदी ने भीमसेन से इसका कारण पूछा । उन्होंने उत्तर दिया कि अब तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण होने को है, क्योंकि महाराज ने युद्ध के लिए आज्ञा दे दी है । हमारी सेना अब बिलकुल तैयार है । हम लोग भी अपना-अपना बल दिखाने के लिए जा रहे हैं । द्रौपदी ने उत्तर दिया कि प्राणनाथ ! यह तो सर्वथा उचित ही है परन्तु युद्ध के समय रोषावेश में आकर कहीं ऐसा न हो कि आप लोग अपनी सुधि-बुधि भूल जायँ । शत्रुसेना में प्रवेश करने के लिए वास्तव में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है । परमात्मा आपका कल्याण करें ।

द्वितीयाङ्कः

महाभारत का लोमहर्षण संग्राम आरम्भ हो गया । कौरवी सेना के प्रथम अधिनायक महाबाहु भीष्म को अर्जुन ने कैतव-नीति का आश्रय लेकर अपने प्रखर विशिखनिकर से विद्ध करके धराशायी कर दिया । इसके अनन्तर-धनुर्विद्या-विशारद द्रोणाचार्य सेनापति चुने गये । इनकी सरज्ञकता में संग्राम ने और भी उग्ररूप धारण किया । षोडशवर्षीय अभिमन्यु को सप्तमहारथियों ने घेरकर चक्रव्यूह में मार डाला । इससे दुर्योधन को बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने अपने कंचुकी विनयन्धर को आज्ञा दी कि तुम देख आओ कि महाराणी भानुमती इस समय कहाँ हैं । और इसके अनन्तर मेरा युद्ध-रथ तैयार करके ले आओ, क्योंकि मुझे अभी अपने उन वीर योद्धाओं का अभिनन्दन करने के लिए जाना है जिन्होंने आज बड़ी वीरता से लड़कर अभिमन्यु का वध किया है ।

राजा के आज्ञानुसार विनयन्धर उन्हें भानुमती का पता देकर रथ को सज्जित करने के लिए चला गया । दुर्योधन एक विटप की ओट में छिपकर भानुमती और उसकी सखियों का वार्तालाप सुनने लगा । यह प्रेमवार्ता एक दुःस्वप्न के सम्बन्ध में थी । भानुमती ने गत रात्रि को स्वप्न देखा था, कि एक दिव्याकृति नकुल ने सौ सर्पों को मार डाला था । दुर्योधन ने नकुल से माद्रीनन्दन का अर्थ लगाया और उसकी धृष्टता एवं भानुमती की निर्लज्जता पर बहुत कुढ़ करके उन दोनों का वध करना निश्चय किया, परन्तु जब आगे चलकर बातों ही बातों में सारे रहस्य का उद्घाटन हुआ तो उसे अपने अविचारपूर्ण कार्यकलाप पर बड़ा परिताप हुआ ।

रानी भानुमती ने दुःस्वप्न के अनिष्ट परिणाम की शान्ति करने के लिए भगवान् भास्कर की पूजा करनी चाही और अपनी दासी तरलिका को पूजनोपहार लाने का आदेश देकर आप ध्यानावस्थित होकर सूर्य की वन्दना करने लगी। दुर्योधन ने दासी से पुष्पादिक लेकर रानी के आगे बढ़ा दिये जिससे कुछ फूल पृथ्वी पर गिर पड़े। सुखस्पर्श के कारण रानी का ध्यान भंग हो गया और अपने सामने महाराज के वहाँ खड़ा देखकर वह बहुत लज्जित हुई। अब उसने महाराज को सारी स्वप्न-कथा कह सुनाई। थोड़ी ही देर में भ्रमभंग होकर वह वेग से आया जिससे भयभीत होकर भानुमती महाराज के साथ दारुपर्वत मन्दिर को चली गई। अभी उन्हें गये कुछ देर भी न हो पाई थी कि कंचुकी “तोड़ दिया तोड़ दिया” इस प्रकार चिल्लाता हुआ उधर आया, और दुर्योधन के बहुत पूँछने पर उसने यथार्थ बात कही। थोड़ी देर में प्रतिहारी ने आकर महाराज को सूचित किया कि जयद्रथ की माता और दुःशला कुछ निवेदन करने आई हैं। वास्तव में यह दोनों अर्जुन की उस दारुण प्रतिज्ञा के महाराज को सुनाने आई थीं जो उन्होंने जयद्रथ-निधन के सम्बन्ध में की थी। इसको सुनकर दुर्योधन को हँसी आ गई, और उसने उसकी उपेक्षा करके कहा कि कौरव वीरों से परिरक्षित जयद्रथ का अर्जुन कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकते। जैसे उन्होंने और और प्रतिज्ञाएँ कर रखी हैं वैसे ही एक यह भी है। यह सुनकर उन्हें कुछ शान्ति मिली। दुर्योधन दूसरा रथ मँगाकर संग्राम-भूमि को चले पड़ा।

तृतीयाङ्क

आज बड़ा भयंकर संग्राम हो रहा था । अर्जुन ने जयद्रथ को मारकर एक प्रकार से द्रोण की सारी रणकुशलता पर पानी फेर दिया था इसी लिए आज वे क्रोधान्ध होकर युद्ध कर रहे थे । संग्राम की भीषणता को देखकर श्रीकृष्णजी ने अनुमान लगाया कि यदि इसी प्रकार से युद्ध होता रहा तो पाण्डवों की कुशल नहीं । इसी लिए उन्होंने द्रोणवध के लिए पड़्यन्त्र रचा ।

द्रोण को पुत्र-वियोग में प्राण परित्याग करने का शाप था । यह बात श्रीकृष्ण को मालूम थी । उन्होंने कहा कि यदि कोई आज द्रौणि के संग्राम-भूमि में निरस्त करके उसके मरण की किंवदन्ती फैला दे तो अनायास ही द्रोणाचार्य मर जायेंगे, क्योंकि द्रौणि के असह्य वियोग के कारण वे प्राण धारण करने को सर्वथा असमर्थ हैं ।

भीमसेन ने उत्साहपूर्वक कहा, यह तो बायें हाथ का खेल है । आज ही द्रौणि को मैं संग्रामभूमि से बाहर फेंक दूँगा और अश्वत्थामा नामी हाथी को मार कर द्रौणि के मारे जाने का झूठा समाचार चारों ओर फैला दूँगा, परन्तु यह तभी सम्भव है जब ज्येष्ठ महाराज भी इसमें सम्मिलित हों क्योंकि आचार्य इस संदिग्ध विषय में उनसे अवश्य पूछेंगे ।

पूर्व निश्चय के अनुसार दूसरा युद्ध आरम्भ हुआ । भीमसेन ने द्रौणि का रथ उठाकर संग्रामभूमि से बहुत दूर फेंक दिया, और कृतवर्मा के अश्वत्थामा नामी हाथी को मारकर द्रौणि-निधन की किंवदन्ती फैला दी । इस दाहण समाचार को सुनते ही द्रोण मर्माहत

हुए और इसकी सत्यता का अनुसन्धान करने लगे । परन्तु किसी ने यथार्थ बात नहीं कही । अन्त में धर्मराज ने वही संदिग्ध वचन कहे, जिससे विक्षुब्ध होकर आचार्य ने अपनी जीवन-आशा के साथ-साथ शस्त्र परित्याग कर दिया । फिर क्या था, धृष्टद्युम्न ने अपनी करवाल के एक ही प्रहार से उनका सिर काट डाला, जिससे कौरवी-सेना में करुण क्रन्दन मच गया ।

जय द्रौणि (अश्वत्थामा) की मूर्च्छा व्यतीत हुई तो वह तुरन्त संग्रामभूमि को पैदल ही दौड़ा । यहाँ का कोई और ही दृश्य था । संग्रामस्थली श्मशानभूमि हो रही थी । बड़े-बड़े वीर अपने प्राण लेकर दौड़ रहे थे । अन्त में उसने अपने पिता के सारथी अश्वसेन को रिक्त स्यन्दन लिये जाते देखा, जिससे उसे इस बात का अनुमान होने लगा कि आज पिताजी संग्रामभूमि में मारे गये । थोड़ी देर बाद उसकी यह धारणा सत्य निकली और जय अश्वत्थामा ने निरस्त्र आचार्य पर धृष्टद्युम्न के द्वारा खड्ग प्रहार करके उनका अंत करने की कथा सुनी, तब उसका क्रोधकृशानु और भी प्रज्वलित हुआ, और उसने पांचाल, पाण्डव तथा यादव वंश के निधन करने का प्रण किया ।

कृपाचार्य ने उसके उत्साह का अभिनन्दन करते हुए कहा कि चलो, तुम्हें कुरुराज से मिलाकर सेनापति बनवा दें । इसलिए ये दोनों दुर्योधन के पास पहुँचे । यहाँ दुर्योधन और कर्ण में पहले से कुछ वार्ता हो रही थी । कर्ण द्रोण की अस्त्र-परित्याग की नीति की आलोचना कर रहे थे, और उन्होंने दुर्योधन पर यह प्रभाव डाल दिया था कि वास्तव में आचार्य ने अपना कर्तव्य पालन नहीं किया, क्योंकि वे द्रौणि को

भारत का सम्राट् बनाना चाहते थे। इस वार्ता का अंत होते ही कृपाचार्य और द्रौणि वहाँ आ पहुँचे। दुर्योधन ने द्रोणवध पर बड़ा संताप प्रकट किया। इतने ही में कृपाचार्य ने द्रौणि को सेनापति बनाने का प्रस्ताव उपस्थित किया, परन्तु दुर्योधन ने इस विषय में अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए कहा कि मैंने अंगराज को सेनापति नियुक्त कर रखा है।

इसी समय कर्ण और अश्वत्थामा में विवाद आरम्भ हो गया और विवाद यहाँ तक बढ़ गया कि वे परस्पर मरने-मारने को उद्यत हो गये। इतने ही में उधर संग्राम ने भयंकर रूप धारण किया। भीम ने दुःशासन को पकड़कर उसके वक्षःस्थल से रुधिर पान करना चाहा और बड़े अभिमान के साथ यह घोषणा की कि जिस कौरव वीर को अपने बाहुबल का अभिमान हो वह इसकी रक्षा करे। यह देखकर अश्वत्थामा ने कर्ण से कहा कि अब जाकर राजयन्धु की रक्षा करो। तुम्हारी परीक्षा का यही अवसर है। अभी दुर्योधन दुःशासन की रक्षा के लिए घटनास्थल पर पहुँच भी न पाया था कि भीम ने उसे मारकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

चतुर्थीक

दुःशासन की रक्षा के उद्योग में दुर्योधन बुरी तरह से घायल हुआ। उन्हें मूर्च्छित देखकर सूत स्यन्दन में डालकर सेना-शिविर के पृष्ठ भाग में ले गया। इधर भीम ने कौरवी सेना में प्रलयकांड मचा दिया। धीरे-धीरे दुर्योधन को चेत आया तो वह भीम का सिंहनाद सुनकर

तत्काल दुःशासन की रक्षा करने के लिए सन्नद्ध हुआ, परन्तु सारथी ने उसे समझा बुझाकर रोका और कहा कि जो होना था सो हो चुका, अब वहाँ जाने से कुछ लाभ नहीं। दुर्योधन को दुःशासन-वध का समाचार मिलते ही बड़ा दुःख हुआ और वह वहीं बैठकर विलाप करने लगा। इतने ही में संग्रामभूमि से सुन्दरक वहाँ आ पहुँचा। दुर्योधन ने उससे युद्ध का समाचार पूछा, तो उसने सारी व्यवस्था कहते हुए अन्त में धीरे से यह भी कहा कि महाराज, वृषसेन अर्जुन से घोर संग्राम करने के अनन्तर मारे गये, और अब अङ्गराज अपने प्राणों को हथेली पर रखकर लड़ने के लिए जा रहे हैं। दुर्योधन ने सुन्दरक से कहा कि तू जाकर उन्हें रोक, मैं अभी आ रहा हूँ। दुर्योधन संग्राम-भूमि में जाने ही को था कि महाराज धृतराष्ट्र और गान्धारी वहाँ पर आ पहुँचे। उन्हें देख दुर्योधन मर्माहत हुआ।

पञ्चप्राङ्क

दुर्योधन को अकेले एकान्त में बैठे हुए देखकर गान्धारी को बड़ा शोक हुआ और वह कहने लगी कि प्रिय पुत्र, दुर्भाग्य का यह कुफल दृष्टान्त भी देखना था। आज तुम्हारे सौ भाइयों में से कोई भी वीर यहाँ नहीं है इसलिए तुम अपने परमहितैषी सञ्जय की सम्मति का सम्मान करो। अब भी पाण्डवों के पास सन्धि का प्रस्ताव भेज दो। यह सुनकर दुर्योधन के हृदय में क्षत्रियोचित अभिमान जागृत हुआ और उसने कहा कि हे जननी ! तुम्हारे समान वीरप्रसू माता के मुख से ऐसा कायरता का प्रस्ताव कदापि शोभा नहीं देता। धृतराष्ट्र ने भी उससे

सन्धि स्थापित करने को कहा । दुर्योधन ने उनके सारे तर्कों का उत्तर दिया और अन्त में यही कहा कि अब युद्ध को छोड़कर और कोई विचार उचित नहीं समझ पड़ता । आप ही विचारिए, मेरी आश्रित ग्यारह अक्षौहिणी सेना मारी गई और मैं फिर भी अपने तुच्छ प्राणों के लिए शत्रु के सामने बद्धाञ्जलि होकर प्रार्थना करूँ ! यह कदापि नहीं हो सकता ।

इस प्रकार दुर्योधन और गान्धारी में संवाद हो ही रहा था कि संग्राम-भूमि से शल्य शून्य स्यन्दन लिये जाते हुए दृष्टिगोचर हुआ । इसे देखकर दुर्योधन का रहा सहा धैर्य छूट गया और उन्होंने अनुमान कर लिया कि आज कर्ण अवश्य मारे गये । घटना का अनुसन्धान करने से पता लगा कि संग्राम करते समय उनके रथ का चक्र अचानक धरती में फँस गया और जिस समय कर्ण उसे निकालने लगे उसी समय अर्जुन ने उनके ऊपर शस्त्राघात करके उनका सिर काट डाला ।

अर्जुन की यह नृशंसता सुनकर दुर्योधन का क्रोध-कृशानु और भी अधिक भड़क उठा और उसने वृद्ध महाराज से युद्ध में जाने की आज्ञा माँगी । धृतराष्ट्र ने बड़े कातर स्वर से कहा कि यदि तुमने यही निश्चय कर लिया है तो कृपाचार्य अथवा अश्वत्थामा में से किसी को सेनापति बना लो, परन्तु यथासाध्य भीम से युद्ध न करना ।

इतने ही में चारों ओर से सिंहनाद सुनाई पड़ने लगा । सञ्जय ने कहा कि महाराज, यह किसी अन्य भयङ्कर उत्पात की सम्भावना का संकेतक है । थोड़ी ही देर में भीम अर्जुन और भी निकट आ पहुँचे और आकर कड़ककर पूछा कि दुरात्मा अभिमानी दुर्योधन कहाँ है ।

इसके उत्तर में सारथी ने निवेदन किया कि वह वृद्ध महाराज और राजमाता के साथ यहीं बैठे हैं। अर्जुन ने यह सुनकर भीम से कहा कि चलो लौट चलें, गुरुजनों को क्षुब्ध करना उचित नहीं है। परन्तु भीम ने कहा कि नहीं, उन्हें पुरानी प्रणाली के अनुसार अभिवादन करके जाना चाहिए। यह कहकर वे आगे बढ़ गये और उन्होंने अपने क्रूर कार्य-कलापों का परिचय देकर दोनों ने धृतराष्ट्र को प्रणाम किया। दुर्योधन ने भी इन्हें बड़ा प्रगल्भ उत्तर दिया।

भीम और दुर्योधन में इस प्रकार वाग्वಾದ हो ही रहा था कि वहाँ पर कृशानु-कल्य अश्वत्थामा आ पहुँचा और उसने अर्जुन से डाटकर कहा कि हे दुष्ट ! तेरे ही कपट से मेरे पिता मारे गये। इसलिए मैं आज पाण्डु-याज्ञालवंश का अन्त करके ही छोड़ूँगा। अश्वत्थामा की दर्पोक्ति सुनकर धृतराष्ट्र को बहुत आनन्द हुआ; और उसने दुर्योधन से कहा कि तुम्हारे सौभाग्य से यह अद्वितीय धनुर्धर तुम्हारी सहायता के लिए आ गया है, इसलिए उठकर इसका स्वागत करो। यह बड़ी तत्परता के साथ तुम्हारा कार्य करेगा।

दुर्योधन ने उत्तर दिया कि पिताजी, मेरे अभिन्न-हृदय मित्र कर्ण की निन्दा करने के कारण यह मेरा अर्जुन के समान ही शत्रु है, मैं इसका मुख देखना नहीं चाहता। धृतराष्ट्र ने सञ्जय के द्वारा अश्वत्थामा से कहलाया कि वत्स ! देखो, मैंने शैशवकाल से अब तक तुम्हारे ऊपर पुत्र-स्नेह बनाये रक्खा है। इसलिए अब तुम इस आपत्ति-काल में दुर्योधन की सहायता करो। तुम्हें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि पाण्डवों ने तुम्हारे वध की मिथ्या किंवदन्ती फैलाकर

तुम्हारे पिता को अत्यन्त अपमान-पूर्वक मार डाला है इसलिए उनके पराभव का बदला लेना तुम्हारे समान सत्पुत्र का कर्त्तव्य है ।

दुर्योधन अब रणक्षेत्र को चला गया और वृद्ध राज-दम्पती को सञ्जय शल्य के शिविर में लिवा ले गये।

षष्ठाङ्क

महाभारत समाप्त हो गया । धर्मराज ने मारे गये वीरों का अन्त्येष्टिक संस्कार करने की आज्ञा दे दी । एक दिन वह द्रौपदी के साथ बैठे हुए बातें कर रहे थे कि देखो भीम की प्रतिज्ञा-पूर्ति में विघ्न उपस्थित करने के लिए ही यह दुष्ट कौरवराज कहीं छिप रहा है । अब उन्होंने सहदेव से कहला भेजा कि जैसे बने वैसे उस दुष्ट का पता लगाया जावे । बहुत सम्भव है कि वह समन्तपंचक के निकट ही कहीं होगा ।

इतने ही में पांचालक वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने निवेदन किया कि महाराज दुर्योधन का पता लग गया । परन्तु कुमार भीमसेन के यहाँ तक न आने का कारण यह है, कि शत्रु का जंघ-भंग किये बिना वह यहाँ नहीं आना चाहते । अब दुर्योधन मिल गया है इसी लिए भीमसेन उस पर अवश्य विजय प्राप्त करेंगे । भगवान् कृष्ण ने आज्ञा दी है कि आपके राज्याभिषेक की तैयारी की जाय और कृष्णा की विकीर्ण वेणी बाँधी जाय । यह समाचार सुनकर महाराज को बड़ा हर्ष हुआ और उन्होंने पांचालक को यथेष्ट पुरस्कार देकर बिदा किया ।

पांचालक के जाते ही एक तृषार्त छुन्नवेशी मुनि वहाँ आ पहुँचे । यह वास्तव में चार्वाक नामी राक्षस था और दुर्योधन का परम मित्र होने के कारण धर्मराज को धोखा देने आया था । धर्मराज की आज्ञा से जब इन्हें जल पिलाया जाने लगा, तब इन्होंने कहा कि हम क्षत्रियों का जल ग्रहण नहीं करते, क्योंकि प्रति दिन युद्ध में प्रवृत्त रहने के कारण यह लोग बन्धु-वध करते ही रहते हैं ।

युधिष्ठिर ने पूछा, महाराज इस समय आप कहाँ से आ रहे हैं ? मुनि ने कहा कि मैं इस समय कुरुक्षेत्र से आ रहा हूँ जहाँ अर्जुन और दुर्योधन में घोर गदायुद्ध हो रहा है । अर्जुन और दुर्योधन का युद्ध सुनकर धर्मराज भयभीत हुए, क्योंकि वह जानते थे कि दुर्योधन गदायुद्ध में बड़ा निपुण है और अर्जुन इसे भली भाँति जानते भी नहीं । इसी लिए उन्होंने फिर प्रश्न किया कि महाराज, उसका युद्ध तो भीम के साथ होना चाहिए था । मुनि ने कहा सो तो हो चुका । बलभद्र ने युद्ध में दुर्योधन को ऐसा संकेत बता दिया कि जिसके द्वारा उसने भीम का अन्त कर दिया ।

इस कारण तब अर्जुन गदायुद्ध को सन्नद्ध हुए । बलराम जी ने जान लिया कि जब भीम ऐसे वीर दुर्योधन के सामने युद्ध में न टहर सके तो यह निरा अनभिज्ञ युद्ध में मारा ही जायगा । इस विचार से वह कृष्ण को रथ पर बिठला कर द्वारका को चले गये ।

भीम का इस प्रकार अन्त सुनकर धर्मराज को बड़ा शोक हुआ और वह भीम और अर्जुन की अपार वीरता को स्मरण करके रोने लगे । अन्त में उन्होंने निश्चय किया कि चलो अग्नि में भस्म होकर

अपने प्राण दे दे' । युधिष्ठिर और द्रौपदी ने अपने हाथ से काण्ड संचय करके चिता बनाई, और उसमें प्रवेश करने के लिए तैयार हुए । यह देखकर कपट मुनि वहाँ से भाग गया ।

युधिष्ठिर ने नकुल और सहदेव से कहला भेजा कि तुम हमारे शोक को भुलाकर महाराज पाण्डु को अश्रुमिश्रित जलांजलि देना और जैसे वन पड़े वैसे अपनी प्राण-रक्षा करना । कृष्णा ने सुभद्रा से कहला भेजा कि गर्भवती उत्तरा की रक्षा करना । इस प्रकार आत्मीयजनों को सन्देश भेजकर राज-दम्पति अग्नि में जलने को तैयार हुए ही थे कि एक विशालकाय पुरुष रक्ताक्त वस्त्र धारण किये हुए और हाथ में गदा लिये हुए पांचाली को ढूँढ़ता उधर आया ।

यह सुनकर धर्मराज पहले तो दुर्योधन को जानकर भयभीत हुए, परन्तु अन्त में साहस करके उससे लड़ने को तैयार हुए, और कृष्णा से कहने लगे कि मैं अभी इस राक्षस को अग्नि में फेंक देता हूँ, तुम अब तो अपनी वेणी बाँध लो । अब भीमसेन और भी निकट आ गये । कंचुकी ने भली भाँति पहचान कर कहा कि महाराज, आप अपने प्रिय बन्धु को ही अग्नि में डालने की चेष्टा कर रहे हैं । देखिए, यह आपके भाई क्या भीमसेन नहीं हैं ? आपने क्रोधावेश में आकर इन्हें अब तक नहीं पहचाना ।

भीमसेन ने महाराज से प्रार्थना की कि मुझे अपने बाहु-पंजर से थोड़ी देर के लिए छोड़ दीजिए जिससे मैं कृष्णा की वेणी अपने हाथ से बाँध दूँ । मैंने दुर्योधन को यमराज का अतिथि बनाया है । अब आर्य प्रसन्न हों । थोड़ी देर में अर्जुन और कृष्ण सब वहीं पर आ

गये। धर्मराज ने भगवान् के चरण-स्पर्श किये और उन्होंने आशीर्वाद दिया।

८—पात्र-परिचय

१—युधिष्ठिर—महाराज युधिष्ठिर के पिता का नाम पाण्डु और माता का नाम कुन्ती था। यह धर्म के अंश से उत्पन्न हुए थे। यह बाल्यकाल ही से सत्यवादी थे। इनका विवाह द्रौपदी के साथ हुआ था। यह बड़े ही धार्मिक, सत्यव्रती एवं न्यायानुवर्ती थे, परन्तु इन सब सद्गुणों के होते हुए भी इनमें अज्ञ-व्यसनता का अवगुण भी था और इसी कारण इन्हें तथा आश्रित बन्धुजनों को अपार दुःख भेलने पड़े। यह भरी सभा में द्रौपदी का अपमान देख कर भी धर्म से विचलित नहीं हुए। इनमें संतोष की मात्रा यहाँ तक बढ़ी हुई थी कि यह पाँच ग्राम पाकर भी संतुष्ट हो जाते और युद्ध न करते। बड़ी कठिनाई से भगवान् ने इन्हें युद्ध के लिए आरूढ़ किया। इन्होंने विराटनगर में मत्स्यराज के यहाँ नौकरी की थी। महाभारत के अन्त में यही सिंहासन पर बैठे थे। युद्ध में बन्धुवध एवं गुरुवध का प्रायश्चित्त करने के लिए इन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया था, और अन्त में परिक्षित को राज्य देकर यह अपने बन्धुओं और द्रौपदी के साथ हिमालय पर चले गये थे और कहते हैं कि वहाँ से यह और इनका कुत्ता सदेह स्वर्ग गये थे।

२—भीमसेन—परम पराक्रमी भीमसेन मध्यम पाण्डव कहलाते थे क्योंकि यह युधिष्ठिर से छोटे थे। इनका जन्म पवन के अंश से हुआ था। यह बड़े पराक्रमशाली थे। गदायुद्ध में यह बड़े निपुण थे,

और इन्होंने इसी गदा के द्वारा बड़े बड़े योद्धाओं का संहार किया था । इनमें दस हज़ार हाथियों का बल था । राजसभा में द्रौपदी का दारुण अपमान देखकर इन्होंने दुःशासन और दुर्योधन का निधन करने की दारुण प्रतिज्ञा की थी । द्रौपदी का अपमान करने पर इन्होंने कीचक का संहार किया था । इन्होंने हिडिम्ब राक्षस को मार कर उसकी भगिनी हिडिम्बा राक्षसी के साथ विवाह किया था, जिससे घटोत्कच नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ था । यह भी युधिष्ठिर के साथ हिमालय पर गलने के लिए चले गये थे ।

३—अर्जुन—महाबाहु अर्जुन पाण्डु के पुत्र थे । इनकी माता का नाम कुन्ती था । अर्जुन की उत्पत्ति इन्द्र के अंश से हुई थी । बाल्य-काल ही से यह बड़े निपुण धनुर्धर थे और द्रोणाचार्य से धनुर्वेद का अभ्यास करके फिर तो यह बाण-विद्या में अद्वितीय हो गये थे । इन्होंने द्रौपदी के स्वयंवर में अपना अपूर्व हस्तलाघव दिखलाकर द्रौपदी की प्रतिज्ञा के अनुसार उसके वरण किया था । कहते हैं कि इन्होंने कृष्ण की सम्मति से सुभद्रा-हरण किया था और मणिपुर में जाकर इन्होंने उलूपी और चित्राङ्गदा से भी विवाह किया था । इस प्रकार सुभद्रा से अभिमन्यु और उलूपी से बभ्रुवाहन उत्पन्न हुए थे ।

अर्जुन ने भगवान् शङ्कर को अपने हस्तलाघव से प्रसन्न करके उनसे पाशुपत अस्त्र प्राप्त किया था । इन्होंने महाभारत में भीष्म, कर्ण आदि बड़े-बड़े वीरों का संहार किया था । युद्ध के अन्त में जब यह अश्व-मेध यज्ञ के घोड़े के रक्षक बनकर मणिपुर गये थे तो वहाँ इन्होंने बिना जाने ही अपने पुत्र बभ्रुवाहन का अपमान किया था जिसके परिणाम-

स्वरूप उस नवयुवक ने युद्ध में इनका सिर काट लिया था, परन्तु जब रहस्य का पता लगा तब नागकन्या ने पातालपुरी से मणि और अमृत लाकर इन्हें पुनर्जीवन प्रदान किया। यह भी युधिष्ठिर के साथ हिमालय पर गये थे और वहाँ जाकर गल गये थे।

४-५ नकुल और सहदेव—ये दोनों भी पाण्डु के पुत्र थे। इनकी माता का नाम माद्री था। इनकी उत्पत्ति अश्विनीकुमारों के अंश से हुई थी। सहदेव बड़े ही गणितज्ञ और सभा-चतुर थे। यह बहुत सोच विचार कर बड़े-बड़े गहन विषयों पर अपनी सम्मति देते थे। नकुल बड़े सुन्दर थे, और खड्ग चलाने में बड़े दक्ष थे। इन दोनों का विवाह भी द्रौपदी के साथ हुआ था। ये दोनों भी हिमालय पर जाकर गल गये थे।

६—कर्ण—वीराग्रणी कर्ण का जन्म कुन्ती से; अविवाहित अवस्था में, सूर्य के अंश से हुआ था। इसलिए कुन्ती ने इन्हें एक मंजूपा में रखकर यमुना में बहा दिया था, और वह बहते बहते हस्तिनापुर के निकट आ लगे थे। उसी समय कौरवराज का सारथी अधिरथ घोड़ों के पानी पिलाने के लिए आया था। उसके कोई पुत्र न था इसलिए उसने इस आदित्य-प्रभु शिशु को यमुना से निकाल लिया और लाकर अपनी पत्नी राधा के पालन-पोषणार्थ सौंप दिया।

कालान्तर में कर्ण बड़े हुए। इन्होंने परशुराम से छलपूर्वक अस्त्रविद्या प्राप्त की। भीष्म से पराजित होने पर परशुराम ने किसी क्षत्रियकुमार को अस्त्रविद्या न सिखलाने की प्रतिज्ञा की थी। इसलिए उन्होंने कर्ण की वद्धकता से रुष्ट होकर इन्हें वर और शाप दोनों ही दिये थे। न

जाने क्यों अर्जुन और कर्ण में कुछ स्वाभाविक वैर सा बना रहता था। दुर्योधन इनके अस्त्र-नैपुण्य के कारण इनसे बहुत प्रसन्न रहता था, इसलिए उसने इन्हें अङ्गदेश का राजा बना दिया था। इनका विवाह अङ्गारवती रानी के साथ हुआ था, जिससे वृषकेतु और वृषसेन नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। वृषसेन को अर्जुन ने संग्राम में मार डाला था, और वृषकेतु महाभारत के अन्त तक रहा था।

कर्ण वास्तव में बड़े ही बली धनुर्धर थे। इनका जन्म कवच-कुण्डल धारण किये हुए हुआ था। कवच के प्रभाव से शरीर में अस्त्राघात नहीं हो सकता था और कुण्डलों के प्रभाव से अकालमृत्यु नहीं हो सकती थी। द्रोण के मारे जाने पर यह महाभारत में कौरवी सेना के अव्यक्त बनाये गये थे। उस समय भयङ्कर संग्राम की सम्भावना हुई। तब निर्व्यूढ अपत्यस्नेह करके इन्द्र ने इनसे कवच और कुण्डल माँग लिये। कुन्ती ने भी कृष्ण के परामर्श से पहले तो इन्हें अपने पक्ष में लाने के लिए प्रयत्न किया, परन्तु जब कर्ण राज्य के सारे प्रलोभनों पर लात मारकर अपनी प्रतिज्ञा पर हिमवान् के समान अचल रहे तब कुन्ती ने इनसे परशुराम-प्रदत्त वरशापानुमोदित बाणों की याचना की, और कर्ण ने इन्हें निःसंकोचभाव से तुरत दे दिया। यद्यपि वह जानते थे कि इन्हीं बाणों द्वारा उनका वध होगा। कर्ण दान के लिए प्रसिद्ध हैं। दुर्योधन के परम मित्र होने के कारण ही यह उन्हें पाण्डवों के विरुद्ध अनुचित परामर्श देते रहते थे।

महाभारत के सत्तरहवें दिन मिथुन ग्वाल के शापानुसार इनका रथ चक्र युद्ध करते समय ही पृथ्वी में फँस गया था । उस समय यह धनुष को छोड़कर अपने हाथ से रथचक्र को उठाने लगे । इतने ही में अर्जुन ने कृष्ण के परामर्श से इनका, परशुराम-प्रदत्त बाण के एक ही प्रहार से मस्तक काट डाला और इस प्रकार इस अद्वितीय वीर का अन्त हुआ ।

७—अभिमन्यु—यह अर्जुन का ज्येष्ठ पुत्र था । इसकी माता का नाम सुभद्रा था जो कृष्ण भगवान् की बहन थीं । अभिमन्यु का विवाह मत्स्यराज विराट की कन्या उत्तराकुमारी के साथ हुआ था जिसके गर्भ से परिक्षित का जन्म हुआ था ।

वीर-केसरी अभिमन्यु सोलह ही वर्ष का था जब चक्रव्यूह-संग्राम में अद्वितीय पराक्रम प्रदर्शित करके अन्त में सप्तमहारथियों द्वारा अन्यायपूर्वक मार डाला गया ।

८—धृतराष्ट्र के पिता का नाम चित्राङ्गद था । इनकी उत्पत्ति नियोग द्वारा हुई थी । इनकी माता का नाम अम्बा था । कहते हैं कि व्यासमुनि के उग्र तेज के कारण इनकी माता ने नियोग के समय बन्द कर लिये थे, इसी लिए ये जन्मान्ध हुए । इनका विवाह गान्धारराज की कन्या गान्धारी के साथ हुआ था । यह बड़े ही वीर थे । इनको ज्येष्ठ होते हुए भी अन्धे होने के कारण राज नहीं मिला था । इन्होंने अपने पुत्र दुर्योधन को पाण्डवों से विरोध न करने के लिए बहुत समझाया था परन्तु उसने किसी तरह नहीं माना ।

महाभारत के युद्ध के अन्त में जब इन्हें पता चला कि भीम ने ही इनके सब पुत्रों का संहार किया है तब तो बदला लेने के अभिप्राय से

इन्होंने बल-पूर्वक भीम को मारना चाहा और इसी अभिप्राय से इन्होंने कृष्ण से कहला भेजा कि मैं भीम से मिलना चाहता हूँ । भगवान् कृष्ण इनका क्रूर अभिप्राय समझ गये और इसी से उन्होंने धृतराष्ट्र के सामने एक लोहे का भीम बनाकर खड़ा कर दिया और धृतराष्ट्र ने अपने बाहुबल से उसको चूर्ण कर दिया । अंत में यह गान्धारी को लेकर वन को चले गये और वहीं पर फिर वनाग्नि में भस्म हो गये ।

९—दुर्योधन—यह महाराज धृतराष्ट्र का ज्येष्ठ पुत्र था । इसकी माता का नाम गान्धारी था । इसके दुःशासन, विकर्ण आदि सौ भाई थे । यह बड़ा हो उद्धत था । ज्येष्ठ होने के कारण इसी को राज्य मिला था ।

जब पाण्डवों ने राजसूय यज्ञ किया था, तो उसमें इसका बड़ा अपमान हुआ था । इससे रुष्ट होकर इसने बदला लेने के अभिप्राय से द्रौपदी का अपमान किया था, और उसके पाँचों पतियों को भरी सभा में नीचा दिखलाया था । स्वाभिमानी तो यह इतना था कि अपना सर्वनाश हो जाने पर भी पाण्डवों से किसी प्रतिबन्धक पर सन्धि स्थापित करने के लिए तैयार न हुआ (अभिमान हो तो ऐसा) । धैर्यशाली तो यह इतना था कि भयंकर संग्राम में भी कभी पीछे नहीं हटता था । अन्त में भीमसेन ने इसे गदायुद्ध में मार डाला ।

१०—दुःशासन—यह दुर्योधन का परम प्रिय कनिष्ठ भ्राता था । वृत्तसभा में, दुर्योधन की आज्ञा से, इसी ने कृष्णा का केशाम्बराकर्षण किया था, जिससे रुष्ट होकर भीमसेन ने इसका वक्षःस्थल विदीर्ण करके रक्तपान करने की और बाहूत्पाटन करने की कठिन प्रतिज्ञा की थी ।

द्रौपदी ने भी इसके रक्त से स्नान करके अपनी वेणी-बन्धन की प्रतिज्ञा की थी। भीम ने महाभारत संग्राम के सोलहवें दिन इसका वध किया था।

१.१—विदुर—इनके पिता का नाम वेदव्यास था। इनकी माता महाराणी अम्बिका की दासी थी। यह बड़े ही ज्ञानी और भक्त थे। बहुत समय तक यह राजमंत्री रहे थे। महाभारत में इन्होंने किसी का पक्षसमर्थन नहीं किया था, और अन्त में यह वन में जाकर योगाग्नि में भस्म हो गये।

१.२—द्रोण—आचार्यप्रवर द्रोण भारद्वाज के पुत्र थे। इन्होंने परशुराम जी से अस्त्रविद्या सीखी थी। पांचालराज द्रुपद से इनकी बड़ी मित्रता थी। इसका कारण यह था कि इन्होंने किरातों को खदेड़ करके उनके राज्य की रक्षा की थी। इसके उपलब्ध में उन्होंने इन्हें अर्ध राज्य देने की प्रतिज्ञा की थी, परन्तु एक बार न जाने क्यों उन्होंने इन्हें एक गाय तक न दी, जिससे खिन्न होकर यह हस्तिनापुर चले आये, और अपनी अस्त्रविद्या-विशारदता के कारण कौरव-राजकुमारों के शिक्षक के पद पर नियुक्त कर दिये गये। कालान्तर में इन्होंने सब शिष्यों को अस्त्र-विद्या में निपुण बनाया।

यह अर्जुन को बहुत चाहते थे इसलिए इन्होंने अर्जुन से गुरु-दक्षिणा न ली, प्रत्युत उसके बदले में इन्होंने द्रुपद को पकड़ लाने का प्रस्ताव अर्जुन के सम्मुख उपस्थित किया और अर्जुन ने इनकी आज्ञा का पालन करते हुए द्रुपद को बन्दी बनाकर इनके चरणों के नीचे लाकर डाला।

महाभारत के युद्ध में द्रोणाचार्य ने दुर्योधन का पक्ष समर्थन किया था। इन्होंने पाँच दिन तक बड़ा घोर संग्राम किया था। इन्हीं के निर्माण किये हुए चक्रव्यूह में फँसकर अभिमन्यु मारा गया था। द्रौणि के वध की किंवदन्ती सुनकर जब यह निरस्त्र बैठे हुए ध्यान कर रहे थे तब राजकुमार धृष्टद्युम्न ने इनका सर काट डाला था।

१३—अश्वत्थामा अथवा द्रौणि—यह महाबाहु द्रोणाचार्य का पुत्र था। इसकी माता कृपाचार्य की बहन थी। यह बड़ा ही वीर था। महाभारत के अन्त में इसने गुप्तरूप से अवशिष्ट पाण्डवी सेना का बड़ा निर्दय संहार किया था। इनमें द्रौपदी के पाँच पुत्रों के वध का अत्यन्त जघन्य कर्म भी था। जब पता लगने पर अर्जुन ने इसका पीछा किया तो इसने उनके आक्रमण को व्यर्थ करने के लिए एक ऐसे अस्त्र का प्रहार किया जिसका निवारण उन्हें नहीं मालूम था।

कृष्ण भगवान् ने अपने चक्र से गर्भस्थ परिक्षित की रक्षा की। अन्त में अर्जुन अश्वत्थामा को पकड़ लाये। ब्राह्मणता के कारण इसका वध तो किया नहीं परन्तु इसका मस्तक फाड़कर मणि निकाल ली जिससे लज्जित होकर यह बदरी नारायण को चला गया। लोग कहते हैं कि यह अमर है।

१४—कृपाचार्य—यह कौरवों के अस्त्र-विद्या के शिक्षक थे। इनकी भगिनी कृपी का विवाह द्रोणाचार्य के साथ हुआ था। महाभारत के युद्ध में यह मारे नहीं गये थे।

१५—द्रुपद—यह पांचालराज पृथक् के पुत्र थे। इनके तीन सन्तानें यज्ञ के प्रसाद से हुई थीं। कहते हैं कि जब द्रोण ने इनका

अपमान कराके बन्धनमुक्त करा दिया तब इन्होंने अपना घोर तिरस्कार समझकर एक पुत्रेष्टि यज्ञ कराया, जिसके प्रभाव से यज्ञकुण्ड से कवच-कुण्डल धारण किये हुए कुमार धृष्टद्युम्न का और द्रौपदी का जन्म हुआ था । शिखण्डी भी इन्हीं का पुत्र था । द्रुपद को निशायुद्ध में द्रोणाचार्य ने मार डाला था ।

१६—धृष्टद्युम्न—यह द्रुपद का पुत्र था । अद्वितीय धनुर्धर होने के कारण यह महाभारत युद्ध में पाण्डवी सेना का अधिनायक बनाया गया था । इसने द्रोण-वध किया था ।

१७—भीष्म—महाबाहु भीष्म शान्तनु के पुत्र थे । इनकी माता का नाम गङ्गा था । यह अष्टम वसु के अवतार माने जाते हैं । कहते हैं कि इनकी माता गङ्गा इन्हें जन्म देकर ही अपनी धार में जा मिली थीं । इन्होंने परशुराम से शस्त्रविद्या सीखी थी । अपने पिता के सुख के लिए इन्होंने आजन्म ब्रह्मचारी बने रहने की प्रतिज्ञा की थी, और अपने कनिष्ठ भ्राताओं के विवाह के लिए काशिराज का स्वयंवर जीतकर उनकी तीनों कन्याओं का अपहरण किया था । उनमें से दो का विवाह विचित्र वीर्य के साथ कर दिया गया था परन्तु पीछे से अम्बालिका के लाख कहने पर भी आपने उसके साथ विवाह नहीं हाने दिया । भग्न-हृदय राजकुमारी परशुराम को बुला लाई, और उनके बहुत आग्रह करने पर भी जब भीष्म ने उसे ग्रहण नहीं किया, तब परशुराम ने उन्हें संग्राम के लिए ललकारा जिसके परिणाम-स्वरूप परशुराम की पराजय हुई । यह देखकर राज-नन्दिनी गङ्गा के किनारे बिता बनाकर भस्म हो गई और भीष्म-निधन के लिए उसने शिखण्डी का अवतार लिया ।

बालब्रह्मचारी होने के कारण यह बड़े पराक्रमी थे । धनुर्विद्या में यह अद्वितीय थे । इन्होंने युद्ध में दुर्योधन का पत्न लिया था, और कौरवी सेना के अधिनायक बनकर इन्होंने दस दिन तक घोर युद्ध किया था । कहते हैं कि दसवें दिन श्रीकृष्णजी के परामर्शानुसार शिखण्डी को आगे करके इन्हें अर्जुन के तीव्र बाणों का लक्ष्य बनना पड़ा, तब भी इनका प्राणान्त न हुआ । यह शरशय्या पर पड़े-पड़े उत्तरायण सूर्य की प्रतीक्षा करते रहे । इन्होंने अन्त समय भी दुर्योधन को पाण्डवों से सन्धि करने का परामर्श दिया था ।

१८—भगवान् कृष्ण—भगवान् कृष्ण के पिता का नाम वसुदेव और माता का नाम देवकी था । इनका जन्म भादों कृष्ण अष्टमी को मथुरा में कंस के कारागार में हुआ था । इनके पिता इन्हें कंस के अत्याचारों से बचाने के लिए गोकुल-निवासी अपने भाई नन्दराज के यहाँ पहुँचा आये थे, और वहीं गुप्त रूप से इनका लालन-पालन हुआ था । कंस ने अपने पिता उग्रसेन को तथा भगवान् कृष्ण के माता-पिता को कारागार में डाल रक्खा था ।

कंस महर्षि नारद के परामर्शानुसार प्रत्येक बालक के वध करने का उद्योग कर रहा था । भगवान् कृष्ण उस समय ग्यारह वर्ष के हो चुके थे, इसलिए जब यह कंस के बुलाने पर मथुरा आये तो उसने इन्हें अपने बड़े बड़े मस्त हाथियों और मल्लों से लड़ा दिया, परन्तु भगवान् ने उन सब को मार गिराया और अन्त में इन्होंने दुराचारी कंस का वध करके अपने माता-पिता तथा नाना एवं अन्य राजाओं को मुक्त किया ।

इस प्रकार अपने शत्रुओं को मारकर भगवान् कृष्ण ने उग्रसेन को मथुरा का राजा बनाया, और आप सान्दीपनि मुनि के आश्रम पर विद्या पढ़ने के लिए चले गये। कालान्तर में भगवान् कृष्ण ने अपना विवाह कुण्डिनपुर के राजा भीष्मक की कन्या रुक्मिणी के साथ किया। इनके आठ और पटरानियाँ थीं। इनकी बुआ का नाम कुन्ती था जो महाराज पाण्डु को व्याही थीं। इसी नाते से भगवान् कृष्ण ने महा-भारत में पाण्डवों की सहायता की थी। अन्त में जरासन्ध और काल-यवन तथा शिशुपाल आदि के आक्रमणों से दुखी होकर यह द्वारका को चले गये थे। वहाँ पर रहते रहते जब इनको अपने वंश-नाश के प्रत्यक्ष लक्षण दिखलाई पड़ने लगे तब यह यादवों के साथ प्रभासक्षेत्र को चले गये। वहाँ पर यादवों ने उन्मत्त होकर ऐसी होली खेली कि सबका संहार हो गया। भगवान् के चरण में पद्म का लक्षण देखकर व्याध ने उन्हें बाणविद्ध किया, जिससे वह परमधाम सिधारे।

१९—बलदेव या बलभद्र—इनके पिता का नाम वसुदेव और माता का नाम रोहिणी था। इनका लालन-पालन कृष्णजी के साथ ही साथ नन्दजी के यहाँ हुआ था। यह बड़े ही बली थे। इनका विवाह रेवती के साथ हुआ था, जिससे दो पुत्र हुए थे। बलभद्र जी दुर्योधन को बहुत चाहते थे, परन्तु कृष्ण को पाण्डवों की ओर देखकर यह दुर्योधन की ओर से युद्ध में सम्मिलित न हुए, प्रत्युत तीर्थ-यात्रा करने के लिए चले गये थे। इनका आयुध हल-भूसल था। यह भी प्रभास क्षेत्र में परमधामसिधारे थे।

२०—सञ्जय—सञ्जय महाराज धृतराष्ट्र के मन्त्री थे। वह बड़े ही बुद्धिमान् थे, और सदा धृतराष्ट्र के पास ही रहते थे। जब अन्ध महाराज ने व्यासजी से महाभारत युद्ध के देखने की इच्छा प्रकट की तो उन्होंने सञ्जय को दिव्य-दृष्टि देकर कहा था कि यह आपको युद्ध का सब हाल बतला दंगे।

२१—चार्वाक—यह राक्षस था और दुर्योधन का मित्र था। इसने धर्मराज को धोखा देने के लिए भीमार्जुन-वध का मिथ्या समाचार फैला दिया था, जिससे युधिष्ठिर और द्रौपदी मरने के लिए तैयार हो गये थे; परन्तु रहस्य का उद्घाटन होने पर ज्यों ही यह भागा त्योंही नकुल ने इसे मार डाला था।

२२—जयद्रथ—यह सिन्धु देश का राजा था। इसके पिता का नाम सुरथ था। यह दुर्योधन का बहनाई था। शङ्कर भगवान् ने इसे वरदान दिया था कि तुम अर्जुन के अतिरिक्त अन्य सब पाण्डवों को एक दिन हरा सकेगो। इसी के बल पर इसने वनवास काल में एक बार द्रौपदी-हरण किया था और चक्रव्यूह संग्राम में इसने अभिमन्यु के अतिरिक्त और किसी पाण्डव वीर को व्यूह में नहीं घुसने दिया था। जब अभिमन्यु मार डाला गया था तो अर्जुन ने इसे मारने की प्रतिज्ञा की थी और अन्त में द्रोणाचार्य के अनन्त चेष्टा करने पर भी अर्जुन ने इसे कमल व्यूह में मारकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की थी।

२३—शल्य—महाराज शल्य मद्रदेश के राजा थे। इनकी बहन माद्री का विवाह पाण्डु के साथ हुआ था। दुर्योधन ने इन्हें धोखा देकर अपने पक्ष में मिला लिया था, जिसके कारण यह महाभारत

के युद्ध में दुर्योधन की ओर से लड़े थे । यह कर्ण के सारथी बने थे और इन्होंने उसकी निन्दा करके उसके बल एवं अंश का यथेष्ट हास भी किया था । अठारहवें दिन महाभारत में इनकी अव्यक्तता में कौरवी सेना लड़ी थी । इन्हें धर्मराज ने उसी दिन मार डाला था ।

२४—सुन्दरक—यह कर्ण का सेवक था । इसने संग्रामभूमि से लौटकर द्रुपसेन और अर्जुन के घोर युद्ध का समाचार दुर्योधन को सुनाया था ।

२५—अश्वसेन—यह द्रोणाचार्य का सारथी था । इसी ने द्रोण-वध का समाचार अश्वत्थामा को दिया था ।

२६—पांचालक—यह समन्तपंचक सरोवर के निकट निवास करनेवाला एक ब्राह्मण था । इसने दुर्योधन के पकड़े जाने का समाचार धर्मराज को सुनाया था, और उनसे उपहार प्राप्त किया था । यदि यह न आता तो युधिष्ठिर को दुर्योधन के पकड़े जाने का समाचार समय पर न मिलता और वह भीम की प्रतिज्ञा-पूर्ति में विघ्न उपस्थित होने के कारण चिन्तित ही रहते ।

२७—द्रौपदी—महाभागा द्रौपदी पांचालराज द्रुपद की पुत्री थीं । इनके भ्राताओं का नाम धृष्टद्युम्न और शिखंडी था । कहते हैं कि इनकी उत्पत्ति अग्निकुण्ड से हुई थी । इनके स्वयंवर में अर्जुन ने लोकोत्तर धनुर्वेद-प्रतिभा का प्रदर्शन करके इन्हें वरण किया था परन्तु कुन्ती के अज्ञात-आदेश के अनुसार पाँचों पाण्डवों से इनका विवाह हुआ था ।

पाण्डवों के राजसूय यज्ञ के अवसर पर इन्होंने दुर्योधन का उपहास किया था । इसी अपराध पर कौरव-राज ने भरी सभा में इनके केशाम्वरा-

कर्पण की आज्ञा दी थी। परन्तु भगवान् की कृपा से लाख चेष्टा करने पर भी दुःशासन इनका कुछ कर न सका था। यह बड़ी स्वाभिमानिनी थी। जब धृतराष्ट्र ने इनसे वर माँगने को कहा था तब इन्होंने केवल अपने पतियों का स्वातन्त्र्य और वाहनास्त्र ही माँगे थे। इन्होंने चौदह वर्ष तक अपनी वेणी नहीं बाँधी थी, क्योंकि तब तक इन्हें दुःशासन के रुधिर से स्नान करने का अवसर नहीं मिला था। यह सदा युद्ध के पक्ष में रहीं और समय-समय पर अपने ओजस्वी भाषणों के द्वारा कौरवों के अपकार और अपने अपमान का उल्लेख करके युधिष्ठिर का क्रोध-कृशानु भड़काती रहीं। अज्ञात-वास के समय इन्होंने दासी का रूप बनाकर सैरन्ध्र नाम से मत्स्यराज की स्त्री की एक वर्ष पर्यन्त सेवा की थी। वहाँ दुरात्मा कीचक इन्हें कुदृष्टि से देखता था जिसके परिणाम-स्वरूप उसे यमराज का अतिथि बनना पड़ा। द्रौपदी के पाँच पुत्र थे, जिन्हें द्रौणि ने पंचपाण्डव समझकर मार डाला था परन्तु इतने गुरुतर अपराध पर भी इन्होंने उसे प्राणदण्ड न दिला कर उसके मस्तक की मणि निकलवा ली थी। यह भी पाण्डवों के साथ हिमालय पर गलने को चली गई थी।

२८—गान्धारी—गान्धारेश सुवल की कन्या थी। इनके दो भाई थे। शकुनि और सौबल्य। शकुनि बड़ा ही धूर्त एवं कूटनीति-विशारद था। इसी की सम्मति के अनुसार दुर्योधन ने पाण्डवों का राज्य न लौटाने का दुराग्रह किया था। गान्धारी बड़ी सती साध्वी एवं पति-परायणा स्त्री थी। जब से इनको मालूम हुआ था कि इनके पति अन्धे हैं तभी से इन्होंने अपने नेत्रों पर पट्टी चढ़ा ली थी। यह दुर्योधन, दुःशासन

आदि सौ पुत्रों की माता थीं। महाभारत युद्ध के समाप्त होने पर इन्होंने पट्टी खेलकर नग्न दुर्योधन को देखा था, जिससे उसका सारा शरीर वज्र का हो गया था। केवल जिस भाग पर वह लँगोटी लगाये हुए था वहीं मांस का रह गया था, और वहीं पर कृष्ण के संकेतानुसार वृकोदर ने गदा प्रहार करके उसे सदा के लिए धराशायी कर दिया था। कृष्ण की कूटनीति से अपने सारे पुत्रों का संहार देखकर इन्होंने भगवान् को शाप दिया था कि हलधर सहित सब यदुवंश भी एक ही दिन में नष्ट हो जायगा। यह अपने पति वृतराष्ट्र के साथ वन में जाकर वंशसम्भूत अग्नि से भस्म हो गई थीं।

२९—दुःशला—यह दुर्योधन की छोटी बहन थी। इसका विवाह सिन्धुराज जयद्रथ के साथ हुआ था। जब अभिमन्यु के मारे जाने पर अर्जुन ने जयद्रथ-निधन की प्रतिज्ञा की थी, तब यह भयकातर होकर आपनी सासु सहित, जयद्रथ की रक्षा के लिए, दुर्योधन के पास गई थी।

३०—कुन्ती—महाराणी कुन्ती यदुवंशावतंस महाभाग वसुदेव की बहन थीं। बाल्यकाल में इन्होंने महर्षि दुर्वासा की सेवा करके उनसे एक मंत्र सीखा था, जिसके द्वारा यह देवाकर्षण कर सकती थीं। इस मंत्र की परीक्षा के लिए इन्होंने सूर्य का आकर्षण किया जिनके प्रसाद से कर्ण नाम का परम प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ था अविवाहित काल में होने के कारण इसे इन्होंने एक मंजूषा में रख कर यमुना जी में बहा दिया था।

कुन्ती का विवाह महाराज पाण्डु के साथ हुआ था। महाराज पाण्डु को सन्तान उत्पन्न करने का शाप था। इसलिए महाराज की आज्ञा से

इन्होंने देवाकर्षण करके तीन पुत्र उत्पन्न किये थे, और अपनी सखी माद्री से और दो पुत्र उत्पन्न कराये थे । इन पाँचों पुत्रों का पालन-पोषण कुन्ती ही ने किया था, क्योंकि माद्री तो राजा के साथ सती हो गई थी ।

जब पाँचों पाण्डव कष्ट-मृत में अपना सर्वस्व हारकर वन के चले गये थे, तब इन्होंने विदुर के घर में रहकर कालक्षेप किया था । इन्होंने पाँचों पुत्रों के युद्ध के लिए भली भाँति प्रोत्साहित किया था । महाभारत के अन्त में यह धृतराष्ट्र के साथ वन में चली गई थी ।

३१—भानुमती—यह महाराज सुयोधन की धर्मपत्नी थी । इसके गर्भ से लक्ष्मणाकुमारी और लक्ष्मणकुमार का जन्म हुआ था । यह बड़ी ही पति-परायण स्त्री थी । इसने द्रौपदी को वेणी बाँधने के लिए ताना दिया था । दुःस्वप्न देखकर इसने अपने पति के कल्याण के लिए भगवान् सूर्य के अर्घ्य प्रदान का आयोजन किया था उसी समय में प्रमदवन इससे दुर्योधन से भेट हुई थी ।

अन्त में हम अपने परम मित्र हरिदयाल जी 'हरिनाथ' के हृदय से कृतज्ञ हैं कि उन्होंने वेणीसंहार का इतना सफल (faithful) अनुवाद करके हिन्दी-संसार के सम्मुख उपस्थित किया । हिन्दी साहित्य में नाटकों का कितना अभाव है—इसको हमारे हिन्दी के प्रेमी साहित्यिक जानते ही हैं । संस्कृत-साहित्य नाटकों से भरपूर है । यदि इस प्रकार के अनुवाद ही हमारे हिन्दी-साहित्य को अलंकृत करते होते तो आज यह अभाव न खटकता । 'हरिदयाल' की हम कहाँ तक प्रशंसा करें कि

उन्होंने इस कमी का अनुभव कर अपनी विशुद्ध लेखनी को इस ओर बढ़ाया। आपने 'नागानंद' का अनुवाद आगरे में इन पंक्तियों के लेखक को दिखाया था और उस पुस्तक के प्राक्जयन लिखने का सुअवसर दिया था। हर्ष है कि वह पुस्तक दिल्ली-बोर्ड के हाई स्कूल की परीक्षा की पाठ्य पुस्तकों में स्वीकृत कर ली गई है। हरिदयालजी का ध्यान हम इस ओर खींचना चाहते हैं कि उनका काम इतने से ही समाप्त नहीं होता; अभी महाकवि भास के नाटक-चक्रों के अनुवाद की नितान्त आवश्यकता है। यदि स्वप्नवासवदत्ता का अनुवाद हो जाता तो महाकवि कालिदास के 'शाकुन्तल' की मौलिकता पर गहरी छाप पड़ती।

हमारे विचार से कालिदास की 'लघु-त्रयी' का सफल हिन्दी अनुवाद होने की प्रबल आवश्यकता है। अब तक जो अनुवाद हुए हैं, कम से कम मुझे तो 'मेघदूत' (राजा लक्ष्मणसिंह तथा पूर्णजी कृत) के अतिरिक्त और नहीं जँचे। खड़ी बोली के अनुवादों का मेरी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं है—न उसमें कोई लावण्य है।

हरिदयालजी के अनुवादों में विशेष बात एक यह और है कि वे सब शुद्ध व्रजभाषा में लिखे गये हैं। भाषा का पद्य भाग इतना सुन्दर है कि उसको पढ़कर मौलिकता का आनन्द आता है। खड़ी बोली में गद्य भाग लिखकर पुस्तक की उपादेयता बढ़ा दी गई है।

व्रजभाषा की मधुरिमा के लिए मैं क्या लिखूँ ? मैं उसकी माधुरी पर मोहित हूँ।

अन्त में मैं हरिदयालजी का इस ओर स्वागत करता हूँ और उनसे यही विनय करता हूँ कि वे इन अनुवादों द्वारा हिन्दी-साहित्य और ब्रजभाषा के भण्डार को श्रीवृद्धि करते रहें ।

लखनऊ,
विजयादशमी
संवत् १९६५

ठाकुर त्रिभुवननाथ सिंह 'सरोज'
'तालुकदार'
रामपुर कलाँ व बिसवाँ राज्य, (सीतापुर)

९—वेणीसंहार के पात्र

पुरुष

सूत्रधार	...	प्रधान नट
पारिपाश्वर्क	...	सूत्रधार के साथ बात-चीत करनेवाला नट
भीम	}	...
अर्जुन		
नकुल		
सहदेव		
युधिष्ठिर	}	प्रसिद्ध पाँच पाण्डव, इनमें युधिष्ठिर नायक हैं ।
जयन्धर		
विनयन्धर		
दुर्योधन		
रुधिरप्रिय	...	पाण्डवों का पक्षपाती राजस ।
अश्वत्थामा	...	द्रोणाचार्य का पुत्र ।
अश्वसेन	...	द्रोणाचार्य का सारथी ।
कृपाचार्य	..	द्रोण के साले, अश्वत्थामा के मामा ।
कर्ण	...	कौरवों की ओर का वीर ।
सुन्दरक	...	कौरवों का दूत ।
सारथी	...	दुःशासन का सारथी ।
धृतराष्ट्र	...	दुर्योधन का पिता ।

सञ्जय	...	धृतराष्ट्र का सारथी ।
बुधक	...	युधिष्ठिर का दास ।
पाञ्चालक	...	पाण्डवों का दूत ।
राक्षस	...	दुर्योधन का मित्र (चारवाक) ।

स्त्रियाँ

द्रौपदी	...	पाण्डवों की स्त्री (यह नायिका है) ।
बुद्धिमती	...	द्रौपदी की दासी ।
भानुमती	...	दुर्योधन की स्त्री ।
सुवदना	...	भानुमती की सहेली ।
तरलिका	..	भानुमती की दासी ।
दुःशला	...	दुर्योधन की बहन ।
वसागन्धा	...	रुधिरप्रिय की स्त्री (राक्षसी)
गान्धारी	...	दुर्योधन की माता ।
प्रतिहारी	...	(दुर्योधन की) ।
विहङ्गिका		कौरवों की दासी ।
जयद्रथ की माता	.	इनके पुत्र का वध हुआ ।

वैष्णोसंहार

प्रथम अंक

मङ्गलाचरण

नान्दी—

बरजे भमरावलि मानै नहीं, कुसुमावलि के रस पीवौ करै ।
जनु इन्द्र मयूखन सां भरि कै, कलिकानि को सोरभ लीवौ करै ।
नितही या सभासद-वृन्दनि की, अखियानि को आनँद दीवौ करै ।
हरि के पद-पङ्कज पै परी या, पुहुपाञ्जलि सिद्धिहि कीवौ करै ॥ १ ॥
कूल कलिन्दजा तैं रस-रास मैं, रूसि कै राधा चलीं अनखायकै
बारि बिमोचति लोचन सौं, तजि रास कौ पीछे लगे हरि धायकै ।
दीन्हें प्रिया-पद-अङ्क पै पाँय, रही तन मैं पुलकावलि छाँयकै ।
हेरनि ती की, विनै पिय की, नितही सजैं रावरे मङ्गल आइकै ॥ २ ॥
नव नेह सां गौरि निहारै सभै, सबै आसुरी सभ्रम हूँ जिनै देखैं ।
करिकै करुना मुनिवृन्द लखैं, मुसकाय कै श्रीहरि जू अवरेखैं ।

वेणी-संहार

वनितान की भीति भगाय कै आयुध, धारिके देवन के रिपु पेखैं ।
वृष-वाहन मय-पुर-दाहन रच्छहिं, देव जिन्हैं करि आनँद लेखैं ॥३॥

(नान्दी के अनन्तर सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार—बस बहुत हो चुका ।

श्रवणमुधासम रुचिर जिन, भारत रच्यो ललाम ।

इच्छाराग-विहीन-तिन, व्यासहिं करौं प्रणाम ॥ ४ ॥

(चार्गे ओर देखकर)

माननीय सज्जन महोदयो, कुछ हमारी भी प्रार्थना है ।

विरचित काव्य प्रबन्ध, अपर कुसमाञ्जलि ऐसी ।

लहे मधुप मकरन्द, वृन्दगुन कनिकन जैसी ॥ ५ ॥

इस समय हम लोग कवि-पञ्चानन भट्टनारायण-प्रणीत वेणी संहार-नाटक का अभिनय करने को जा रहे हैं । हम चाहते हैं कि आप लोग विशेष रूप से ध्यान दें, चाहे कवि के परिश्रमानुरोध से, चाहे महाभारत की पुण्य-कथा के गौरव से, चाहे नूतन नाटक देखने की उत्कण्ठा से ।

(नेपथ्य में)

भाव ! ये लोग सब नटों से कह रहे हैं । आर्य विदुर की आज्ञा से सब वाद्य-यन्त्रों को यथास्थान रख दो, क्योंकि चक्रपाणि भगवान् देवकीनन्दन के आने का यही समय है । आज व्यास, नारद, तुम्बुरु, परशुराम आदि मुनि-पुङ्गवों के साथ भरतवंश की हित-कामना के

लिए भगवान् कृष्ण स्वयं राजदूत बनकर दुर्योधनके शिविर को जानेवाले हैं ।

सूत्रधार—(सानन्द सुनकर) आश्चर्य है कि विश्व के उद्भव, स्थिति, संहार-कारण कंस-शत्रु स्वयं भगवान् विष्णु ने कौरव-पाण्डवों की भीषण युद्ध ज्वाला को शान्त करने के लिए सन्धि की इच्छा से इस भरतवंश को तथा समग्र राजन्यवर्ग को अन्तर्गृहीत किया है । अतः हे पारिपार्श्वक ! तुम नटों के साथ मिलकर सङ्गीतारम्भ क्यों नहीं करते ?

(आकर)

पारिपार्श्वक — अच्छा, आरम्भ करता हूँ । किस ऋतु का गान आरम्भ करूँ ?

सूत्रधार—यदि ऐसा ही है तो उसी शरद-ऋतु के सम्बन्ध में कोई गीत गाओ, जिसमें मृगाङ्क-मूर्ति भगवान् भास्कर, ग्रहन-क्षत्र, कौंच, मराल, सप्तच्छद, कुमुद, कोकनद एवं काश-कुसुम-पराग से समस्त दिङ्मण्डल श्वेत दिखलाई पड़ता है तथा जिसमें सगेवर-सलिल अत्यन्त स्वादिष्ट हो जाता है ।

प्रवलपच्छ नृप वश करन, अहमिति अति अधिकाय ।

गरल वचन कौरव अवनि, गिरत काल बस आय ॥ ६ ॥

अथवा

दिग्भूषण सत पच्छ युत, मदकल कृज्जनहार ।

राजहंस महि पै परत, सरदागम अनुसार ॥ ६ ॥

पारिपार्श्वक—भाव ! ऐसी अमाङ्गलिक रचना क्यों करते हो ?

वेणीसंहार

सूत्रधार—(आश्चर्य से मुस्कराकर) मारिष ! शरद-समय के वर्णन की इच्छा से मैंने हंसें को धार्तराष्ट्र कहा है, न कि कौरवों को । अतः तुम्हारा प्रलाप वृथा है । इसमें कौन सी अमङ्गल रचना है ?

पारिपार्श्वक—नहीं, ऐसा नहीं, कि मैं तुम्हारे अभिप्राय को नहीं समझता हूँ । किन्तु वास्तविकता यह है कि तुम्हारे अमाङ्गलिक वचनों को सुनकर मेरा हृदय दहल गया है ।

सूत्रधार—मारिष ! अब तो सारा अमङ्गल नष्ट हो गया, क्योंकि जब कंसाराति भगवान् कृष्ण स्वयं राजदूत बन कर जा रहे हैं तो फिर अमङ्गल को अवकाश ही क्या ? देखो

अरि-वृन्दन को रन-खेतन मारिकै, वैर की ज्वाल निवारनहारे ।
नृप पाण्डु के नन्दन माधव संग, लहैं वसुधा पै सदा सुख सारे ।
निज वंश-विरोध बिनासि सत्रै, चहुँ ओर विजय यश छावनवारे ।
वर बन्धुन मंत्रिन संग रहै, कुसली कुरुराज-तनै बल धारे ॥७॥

(नेपथ्य में)

। डाटकर । अरे दुरात्मा अमङ्गलपाठी नट !

गृह लाख में राखि जरायौ चह्यौ, विष अन्न में दीन्हों हमें करि धोखे ।
हरिबे कहैं जीवन औ धन को, जिन्ह कीन्हें सदा अपकार अजोखे ।
कर सेां गहि द्रोपदी के पट-चीर, सभासद बैठे रहे जहाँ चोखे ।
कह तो सठ कौरव-वंश-कलंक, जियें कस भीषण भीम के रोखे ? ॥८॥

(सूत्रधार और पारिपार्श्वक दोनों सुनते हैं)

पारिपार्श्वक—भाव ! यह शब्द कहाँ से आ रहा है ?

सूत्रधार—(पीछे सभ्य देखकर) यह तो क्रोध-कलित भीमसेन, सहदेव सहित, इसी ओर आ रहे हैं । इनके विशाल भालस्थल पर यमराज के द्वार के समान भीषण भृकुटियाँ त्रिशूल सी बन रही हैं । ऐसा मालूम होता है कि यह हमको अपने दृष्टि-पात से खा जायेंगे । कदाचित् इनको भगवान् कृष्ण का कौरवों के साथ सन्धि के लिए जाना अच्छा नहीं लगता है, अतः इनके सामने ठहरना उचित नहीं । आओ, हम लोग और कहीं चलें ।

(दोनों का प्रस्थान)

प्रस्तावना

(सहदेव के साथ क्रांक्षित भीमसेन का प्रवेश)

भीमसेन—अरे दुरात्मा अमङ्गलपाठी दुष्ट नट ! “गृह लाख में” आदि फिर पढ़ता है ।

सहदेव—आर्य ! क्षमा कीजिए, क्षमा कीजिए । इस भरत-पुत्र का कथन सर्वथा हमारे अनुकूल है । देखिए, “अखिन्दन के” इत्यादि पढ़कर अभिनय करता है ।

भीमसेन—(सोपालम्भ) आप लोग तो कभी कौरवों का अमङ्गल सोच ही नहीं सकते, क्योंकि आप लोगों के वे भाई हैं और सन्धि करने के योग्य भी हैं ।

वेणी-संहार

सहदेव—(सक्रोध) आर्य !

अन्ध नृपति के सुतन कहँ पद पद कृत अपकार ।

क्षमा करे को—भूप जो होय न बरजनहार ॥ ९ ॥

भीमसेन—ऐसा ! इसी लिए मैं अद्यावधि आप लोगों से भिन्न रहा हूँ ।

आबाल सों मम वैर जो कुरु-बालकनि सों है सही ।

याको न कारन भूय, पारय, नकुल औ तुमहूँ नहीं ॥

जिमि जरासंध सँहारि संधि विदारिकै जग-यश लियो ।

तिमि तोरिहीं या सन्धि को हठ आप सब मिलि राखियो ॥ १ ॥

सहदेव—(सविनय) आपके इस प्रकार क्रुद्ध होने पर कदाचित् ज्येष्ठ महाराज को बड़ा खेद होगा ।

भीमसेन—क्या उन्हें कभी खेद भी होता है ? वत्स, वह तो खेद करना जानते ही नहीं ।

आरत है विपुल पुकारत अनाथ जिमि,

नृपति-सभा में देखि द्रुपद-दुलारी को ।

बारह बरस बसि बिपिन बिताये, संग,

व्याधनि के धारि बपु बलकलधारी को ॥

तपत रसोई रहे भूपति विराट-गोह,

कीन्हों काम निपट अधम पसुचारी को ।

तौ हूँ नृप दुखित सदा ही रहे मोसों हिय,

करत न खेद कुरुनन्द अपकारी को ॥ ११ ॥

अतः सहदेव तुम लौट जाओ, तथा चिर-क्रोध से संतप्त इस दुखी भीम की ओर से महाराज से कह देन ।

सहदेव—आर्य, क्या कहूँ ?

भीमसेन—यह कहना—

लांघियों तुम्हारौ अन्शासन है घोर अघ,

पालि ताहि पाप में परख्यो हौं हियआनो में ।

याही लागि पारथ नकुल सहदेव वीच,

आपनो अमित अपमान अनुमानो में ॥

नाहीं तौ उठाय रक्त-रंजित गदा को कैपि,

एक ही दिवस कुरु-कुल घालि घानौ में ।

आजु तैं न जेठे बन्धु भूपति हमारे तुम,

आपने को रावरो अनुज नहिं मानौ मैं ॥ १२ ॥

(यह कहकर उद्धततापूर्वक इधर-उधर घूमता है)

सहदेव—(भीमसेन के पीछे-पीछे जाते हुए अपने मन में)

अरे ! क्या आर्य ने पांचाली की चतुःशाला में प्रवेश किया तो अच्छा मैं तब तक यहाँ ठहरता हूँ ।

(ठहरता है)

भीमसेन—सहदेव, लौट जाओ और जो कुछ तुम्हारे भाई करें वही तुम भी करो । मैं अभी अम्नागार में जाकर अपने रणायुध धारण करता हूँ ।

वेणी-संहार

सहदेव—आर्य ! यह अस्त्रागार नहीं है । यह तो द्रौपदी की चतुःशाला है ।

भीमसेन—(कुछ सोचकर) क्या यह अस्त्रागार नहीं है, पांचाली की चतुःशाला है ? (कुछ हँस कर) तो मुझे कृष्ण को यहाँ बुला लेना चाहिए । (सप्रेम सहदेव का हाथ पकड़कर) वत्स, आओ ।

सहदेव—जैसी आर्य की आज्ञा ।

भीमसेन—वत्स, ज्येष्ठ महाराज जो कौरवों के साथ सन्धि की इच्छा करके हमें दुःखित कर रहे हैं उस पर आप भी विचार करिए ।

(घूमकर दोनों का गृह-प्रवेश)

भीमसेन—(क्रांथ के साथ पृथ्वी पर बैठता है)

सहदेव—आर्य ! यह आसन बिछा हुआ है । इसी पर बैठकर आप कृष्णागमन की प्रतीक्षा करें ।

भीमसेन—(आसन पर बैठकर और कुछ सोच कर) वत्स, कृष्णागमन पद को सुनकर मुझे द्रौपदी का स्मरण हो आया । अच्छा, यह तो वनाओं कि भगवान् वामुदेव किस प्रतिबन्धक पर दुर्योधन से सन्धि करने को भेजे गये हैं ।

सहदेव—आर्य, पाँच गाँव लेकर

भीमसेन—(कानों पर हाथ रख कर)

हाय ! धर्मराज के तेज का इतना हास ! यदि यह सत्य है तो मेरा हृदय दहला जाता है । (घूमकर और ठहरकर) इसलिए न तुमने कुछ कहा, न भीम ने कुछ सुना ।

नात्र तेज अति उग्र वह, वह प्रज्वलित प्रताप ।

खेलि जुआ महुँ भूप सब, निहचै हारयौ आप ॥१३॥

(नेपथ्य में)

महारानी ! धैर्य धारण कीजिए ।

सहदेव—(नेपथ्य की ओर देखकर) क्या यह कृष्णा है । इसके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह रही है । यह तो आर्य के निकट आ रही है । बड़ा कष्ट आ पड़ा ।

भरयो दामिनी-दुति-सरिस क्रोध तात में आय ।

पावस ऋतु में द्रौपदी सो देहै भड़काय ॥ १४ ॥

(पूर्व वर्णित रूप से द्रौपदी और परिचारिका का प्रवेश । द्रौपदी अश्रुपात करते हुए और दीर्घ निःश्वास लेते हुए)

दासी—महारानी ! धैर्य धारण कीजिए । कुमार भीमसेन का तो कौरवों से पुराना वैर चला आता है, वही तुम्हारे इस दुःख को निवारण करेंगे ।

द्रौपदी—हाँ, यह हो सकता है, परन्तु तभी जब महाराज इसके प्रतिकूल न हों ।

दासी—अरे ! कुम्भार तो यहीं बैठे हैं । महारानी इनके पास जायँ तो ।

बेणी-संहार

द्रौपदी—अच्छा, तो आओ चलें।

(दोनों चलती हैं)

दासी—कुमार की जय हो ! जय हो !

भीमसेन—(बिना देखते हुए) “छात्र तेज वाह”

दासी—(घूमकर) महारानी, आपके एक प्रिय समाचार सुनाऊँ ।

कुमार इस समय क्रोधित-से प्रतीत होते हैं ।

द्रौपदी—यदि ऐसा ही है तो मेरा यह अनादर भी मुझे आश्वासन दिलाता है । तो यहीं बैठकर स्वामी की बात-चीत सुनूँ ।

(दोनों वैसा ही करती हैं)

भीमसेन—(क्रोध से सहदेव की ओर देखकर) क्या पाँच गाँव पर ही सन्धि की जायगी ?

क्रोध कै कौरव नायक के,

सतवन्धुन को रण में न सँहारिहों ।

संगित पान के कारज लागि,

कहा न दुःशासन को हियो फारिहों ।

त्यों अपने प्रण पालन को,

न कहा दुर्योधन-जङ्घ बिदारिहों ।

सन्धि करें कछु गाँवानि लै,

तुअ भाई भले पै न ताहि बिचारिहों ॥१५॥

द्रौपदी—(सहर्ष एक ओर) प्राणनाथ ! आपने ऐसे वचन पहले कभी नहीं कहे थे, अतः एक बार फिर कह दीजिए ।

भीमसेन—(न सुनकर) “क्रोध कै कौरव नायक के” इत्यादि फिर पढ़ता है ।

सहदेव—क्या आने महाराज के सन्देश को कुछ अनुचित-सा समझा ?

भीमसेन—इसमें औचित्य का कितना अंश है ?

सहदेव—ज्येष्ठ महाराज ने ऐसा कहला भेजा है ।

भीमसेन—किससे ?

सहदेव—दुर्योधन से ।

भीमसेन—क्या ?

सहदेव—वर्णावित्, जयन्त, इन्द्रप्रस्थ अरु मधुपुरी ?

एक ग्राम कहूँ अन्त, जो भावै कुरुराज कहै ॥१६॥

भीमसेन—तो इससे क्या पता चलता है ।

सहदेव—इस प्रार्थना से पता चलता है कि पाँचवें गाँव का नाम न लेकर ज्येष्ठ महाराज ने लाक्षागृह, विष-भोजन, द्यूतक्रीड़ादि मुख्य अपकारों की ओर संकेत किया है ।

भीमसेन—वत्स ! इसमें क्या रक्खा है ।

सहदेव—ऐसा करने से हम लोगों की गोत्रक्षय-शङ्किता और दुर्योधन की सन्धि-कुपात्रता सिद्ध हो जायगी ।

भीमसेन—मूढ़ ! यह सब वृथा है । कौरव असन्धेय हैं यह तो उसी समय प्रमाणित हो चुका था, जब हम लोगों ने वन को जाने

वेणी-संहार

समय कौरव-वंश-विध्वंस के लिए प्रतिज्ञा की थी। संसार में कुरु-कुल-निधन से तुम्हें लज्जा आती है? अरे मूर्ख !

देत क्रोध से। अरिनिधन तुम्हें लोक में लाज ।

पै न सभा में नारि के केशा कर्पण काज ॥ १७ ॥

द्रौपदी—(नेत्रों में आँसू भरकर चुपके से) प्राणनाथ ! इन्हें लज्जा नहीं आती परन्तु कहीं आप भी मेरे केशाम्बराकर्पण रूपी दारुण अनादर को न भुला देना ।

भीमसेन—(स्मरण करके) वत्स ! द्रौपदी ने क्यों विलम्ब किया ? संग्राम-भूमि में जाने के लिए मेरा हृदय उतावला हो रहा है ।

सहदेव—इन्हें तो आये बहुत देर हुई परन्तु रोषावेश के कारण आपने अब तक इन्हें नहीं देखा ।

भीमसेन—(फिरकर और देखकर) कैसे आईं (सादर) देवी ! रोषावेश के कारण हमने आपको नहीं देखा, इसलिए रुष्ट न हो जाना ।

द्रौपदी—आप लंगो के क्रोधित होने से मैं रुष्ट नहीं होती । हाँ, आपकी उदासीनता से अवश्य मुझे क्रोध आ जाता है ।

भीमसेन—यदि ऐसा ही है तो विश्वास रखो, तुम्हारे दारुण अपकार का वैर शोधन कर लिया गया (द्रौपदी का हाथ पकड़कर अपने निकट बैठकर, उसके मुँह की ओर देखकर) इतनी उद्विग्न क्यों दिखलाई पड़ती हो ?

द्रोपदी—प्राणनाथ ! आप लोगों के सन्निकट रहने हुए उद्विग्नता कैसी ?

भीमसेन—अजी क्यों नहीं बतलातीं (विकीर्ण बेणी को देखकर)
अथवा कहने ही में क्या रक्खा है ?

जियत पाण्डु-नन्दन सकल, रहत निकट ही आय ।

द्रुपदराज की सां सुता, ऐसी दशा लगाय ॥ १८ ॥

द्रोपदी—बुद्धिमती ! तुम प्राणनाथ से कह दो कि आपको छोड़कर
और किसे मेरे अपमान का दुःख हो सकता है ।

परिचारिका—महारानी ! जो आज्ञा । (भीमसेन के निकट जाकर
और कर सम्पुट बाँधकर) कुमार !

आज महारानी के दुःख और शोक का कारण इससे भी बढ़कर है ।

भीमसेन—इससे भी अधिक ! कहो, वह क्या है ? कहती क्यों नहीं ।

या कौरव-कुल-ज्वाल में, शलभ वनत है कौन ?

बिखरे कच द्रुपदिहि लुप्त, धूम-शिखा सी जौन ॥ १९ ॥

परिचारिका—कुमार मुनिण, आज राज माता तथा सुभद्रा प्रमुख
सम्पत्ती जनों के सहित महारानी जी आर्या गान्धारी के पादाभिवादन
के लिए गई थीं ।

भीमसेन—यह तो सर्वथा उचित ही है । गुरुजन निश्चय ही
वन्दनीय होते हैं । परन्तु फिर क्या हुआ ?

वेणी-संहार

परिचारिका—वहाँ से लौटते समय उन पर भानुमती ने दृष्टिपात किया ।

भीमसेन—(सरोप) अहा ! शत्रुपत्नी ने देखा ! खेद है । तब तो देवी को क्रोध आना ही चाहिए था । तब फिर क्या हुआ ?

परिचारिका—तब उसने महारानी को देखकर अपनी सखी की ओर दृष्टिपात किया, और बड़े अहंकार से मन्द मुसक्यान के साथ कहा—

भीमसेन—केवल देखकर ही उसे सन्तोष न हुआ ! बाली भी ! ओह ! क्या करें ! अच्छा फिर क्या हुआ ?

परिचारिका—अरी पांचाली ! सुना है कि तेरे पतियो ने पांच गाँव माँगे हैं । फिर अब तू अपने बिखरे बाल क्यों नहीं बाँध लेती है !

भीमसेन—(सक्रोध) सहदेव ! तुमने सुना ?

सहदेव -- वह तो दुर्योधन की स्त्री ठहरी, जो कहे सां थाड़ा है ।

लहि नित निकट निवास वनत वनिता चित वैसी ।

मृदुल-कठिन पै होय ताम्र भरता को जैसी ॥

जिमि विप विटपहि सेइ मधुर बल्ली गुण धारत ।

जो कोउ ताकहँ लुवत ताहि मुच्छा में पारत ॥ २० ॥

भीमसेन—कुमार ! देवी को स्वयं उत्तर देने की तब आवश्यकता पड़ती, जब उनके साथ कोई न होता । (परिचारिका) तो फिर तुमने क्या कहा ?

परिचारिका—मैंने कहा, अरी भानुमती ! जब तक तुम लोगों के केशकलाप मुक्त नहीं होते तब तक हमारी महारानी कैसे वाल बाँध सकती हैं !

भीमसेन—(सपरितोष) वाह ! बुद्धिमती वाह ! तुमने तो ठीक वैसी ही बात कही जैसी कि पाण्डवों के परिजनों को कहनी उचित थी ।

(अपना आभरण देता है)

हे पांचाली, सुनो । अधिक क्या कहूँ; अब शीघ्र ही—

चचल या भुज-दण्डों में कापि, जय ही प्रचण्ड गदा को घुमाइहैं ।

तोरिके दोऊ सुयोधन-जंघ, छिनैक में ताहि धरा पै गिराइहैं ।

सेनित लै तिनसौं निकस्यौ, दोऊ हाथन कौ अरुनारो बनाइहैं ।

प्राण-प्रिया तुव बेनी खुली, निहचै निज पानि सों भीम बँधाइहैं॥२१॥

द्रौपदी—प्राणनाथ ! आपके क्रोध करने पर कुछ भी दुष्कर नहीं है । परन्तु यदि आपके अन्य भाता भी इससे सहमत हों ।

सहदेव—हम सब ऐसा ही चाहते हैं ।

(नेपथ्य में महान् कोलाहल)

(सबका विस्मय पूर्वक सुनना)

भीमसेन—सिन्धु मथन सों उठि मंदर कंदर मँहँ प्रति-धुनि-कारी ।

कौन घात सों प्रलय घनघटा लौं संघट्टन हारी ॥

चेणी-संहार

कृष्ण-क्रोध-दूत-कुरु-कुल को निधन पवन धौं आयौ ।

किन यह मेरे सिंहनाद सम दुंदुभि घोर बजायौ ॥ २२ ॥

(कंचुकी का प्रवेश)

कंचुकी—(ससंभ्रम) कुमार ! भगवान् वासुदेव आ रहे हैं ।

(सबका बद्धाञ्जलि होकर खड़े होना)

भीमसेन—(ससंभ्रम) भगवान् कहाँ हैं ?

कंचुकी—पाण्डवों के पक्षपात से क्रोधित होकर दुर्योधन ने उन्हें बाँधना चाहा था ।

(सब का संभ्रम प्रकट करना)

भीमसेन—(सपरितोष) शोक ! सन्धि का अन्त हो गया है ।
दुर्योधन का जङ्घ-भङ्ग भी हुआ ही समझे । अच्छा, फिर भगवान् विष्णु
ने क्या किया ?

कंचुकी—तब तो भगवान् कृष्ण ने विराटरूप रखकर समस्त
कौरवों को अपने उग्र तेज से मूर्च्छित कर दिया । अब वे हमारे शिविर
ही में हैं, और आप से मिलना चाहते हैं ।

भीमसेन—क्या दुरात्मा दुर्योधन भगवान् कृष्ण को बाँधना चाहता
था (आकाश की ओर देखकर) अरे दुरात्मा । कुरु-कुल-कलङ्क, तूने
मर्यादा का सर्वथा परित्याग कर दिया । अब तो पाण्डवों का क्रोध निमित्त
मात्र ही रह गया है ।

सहदेव—यह दुरात्मा दुर्योधन भगवान् वासुदेव के रूप को क्या समझ सकता था ।

भीमसेन—वत्स ! निश्चय ही यह मूढ़ नहीं जान सकता ।

देखो न—

दूरि कै ज्ञान औ ज्ञात को भेद,

समाधि ही मैं करै आत्म-विहार कौ ।

व्यां पर-ब्रह्महि में रति लाय,

हेराय अनन्त अज्ञान अध्वार कौ ।

जोगी लखैं तम जोतिहू सेां परे,

कोऊ अलौकिक तत्त्व अपार कौ ।

कैसे निहारि सकै मतिमंद,

पुरातन श्री ब्रजराज-कुमार कौ ॥ २३ ॥

आर्य मैत्रेय ! इस समय ज्येष्ठ महाराज क्या कर रहे हैं ?

कंचुकी - कुमार स्वयं जाकर महाराज का विचार जान लें ।

(सबका प्रस्थान)

(नेपथ्य में केलाहल के अनन्तर)

अरे पांचाल, मत्स्य, वृष्णि, अन्धक, सहदेव, प्रभृति हमारे अक्षौहिणीपति एवं कौरव सेना के प्रमुख योद्धागण ! आप लोग सुनो—

दरि न जाय कहूँ सत्य हिये महुँ यह भय धारे ।

करि करि विविध उपाय रहे अबलौँ मन मारे ॥

वेणी-संहार

वंश वैर जनि बढै शान्ति की आस लगाये ।

भरे क्षमा के भाव आजु लों रहे भुलाये ॥

सो पांचाली-चीर-केश खैचन सेां बाढ़ी ।

पंसा-सारी-अरनि रघसि जनु आपुहि काढ़ी ॥

कुरु-कुल-कानन-दहन व्याज भीषण भयकारी ।

नृपति-युधिष्ठिर क्रोध-अनल भरकै दुतिभारो ॥ २४ ॥

भीमसेन—(सहर्ष सुनकर) आर्य की क्रोध-ज्योति अप्रतिहत गति से भड़के !

(नेपथ्य में फिर कोलाहल)

द्रौपदी—(सविनय) प्राणनाथ ! यह क्षण-क्षण पर इस समय प्रलय-पयोदों के चंडनिःस्वान के समान रण-दुन्दुभि क्यों बार-बार वज्र रही है ?

भीमसेन—देवी ! और कुछ नहीं, यज्ञारम्भ हो रहा है ।

द्रौपदी—(सविनय) कौन सा यज्ञ ?

भीमसेन—(सभय) रण-यज्ञ । देखो न—

रण-यज्ञ-कर्त्ता बन्धु हम होता स्वयं भगवान् हैं ।

हैं युद्ध-मख-दीक्षित नृपति-महिषी धरे वृत आन हैं ॥

कुरु-वंश-बलि-पशु, फल प्रिया-अपमान दुख को छोरे हैं ।

नृपगनहि न्योतन हितव्रजत यह दुन्दुभी रव घोर है ॥ २५ ॥

सहदेव—आर्य ! ज्येष्ठ महाराज की आज्ञा से हम लोग संग्रामभूमि में अपना पराक्रम प्रदर्शित करने जा रहे हैं ।

भीमसेन—हम लोग भी महाराज के आदेशानुवर्ती होने को तैयार हैं । (उठकर) देवी ! कौरववंश-विध्वंस के लिए हम लोग जा रहे हैं ।

द्रौपदी—(नेत्रों में आँसू भरकर) प्राणनाथ ! अमुर-समर में जानेवाले भगवान् विष्णु के समान आपका कल्याण हो ।

(दोनों) आपके मांगलिक वचन हमने ग्रहण किए ।

परिचारिका—देवी यह भी कह रही हैं कि प्राणनाथ युद्धभूमि से लौटकर मुझको आश्वासन दें ।

भीमसेन—अब झूठ आश्वासन देने से क्या ?

पाय अनादर अमित खेद लज्जा के मारे ।

अब लौं नीचे किये रहे जाकौं हिय हारे ॥

कोऊ कौरव-कुल-कलंक जीवित है जौ लौं ।

नहीं देखिए प्रिये भीम के आनन तौ लौं ॥ २६ ॥

द्रौपदी—प्राणनाथ, मेरे अपमान से क्रोधावेश में आकर कहीं आप अपने को न भूल जाँय । क्योंकि शत्रुसेना में बहुत सावधानी से जाना चाहिए ।

भीमसेन—अरी नृत्रिय-नन्दिनी ! हम लोग इस संग्राम में सर्वथा सावधान रहेंगे । सुनो—

दीरघ-कुञ्जर-घटा विपुल-संघट्टन पाई ।

जो विदलित-करि-कुम्भ-रुधिर-मज्जा-पल छाई ॥

वेणी-संहार

जामहँ बूड़े देखि परत स्यन्दन समुदाई ।
तिनहू पै धरि चरण चलत सैनिक समुदाई ॥
रुधिर-पान की सभा जहाँ रव-घोर मचावत ।
ताही को अनुहारि शिवाऽशिव शब्द सुनावत ॥
सोई मन् बाजत वाद्य जाहि मुनि के अनुरागैं ।
उठि-उठि अमित कबंध ताल दै नाचन लागैं ॥
यहि रन-सागर सलिल माहि अवगाहन ताई ।
परम चतुरता सकल पाण्डुनन्दन मिलि पाई ॥ २७ ॥

(सब का प्रस्थान)

प्रथम अंक समाप्त ।

द्वितीय अंक

(कंचुकी का प्रवेश)

कंचुकी—सम्राट् दुर्योधन ने मुझे आज्ञा दी है कि विनयधर, तुम अभी जाकर रानी भानुमती का पता लगाओ, वे अभी पूजनीय माताजी का पादाभिवादन करके लौटीं या नहीं। क्योंकि आज मुझे संग्राम-भूमि में भारद्वाज, रविनन्दन, सिन्धुराज प्रभृति सेनानायकों के सौभद्र का वध करने पर वधाई देने के लिए जाना है। तो मुझे शीघ्र ही जाना चाहिए। क्या कोई महाराज के अनुशासन की अवहेलना कर सकता है? मैं जराजीर्ण हो गया हूँ। मर्यादा मात्र के पालनार्थ मेरा अन्तःपुर में निवास है। और वृद्धता के उपालम्भ ही में क्या रक्खा है, अंतःपुरवर्ती समग्र व्यवहारिकों का यही वेश-भूषण एवं आचार है।

नीके सकत न देखि यदपि ये लोचन दोऊ ।
राखत दोऊ श्रवण सुनत, कहि सकत न सोऊ ॥
धरै अमित बल गात शक्ति साहस के आछत ।
तौउ अधिकारिहि लागि हाथ लाठी यह राखत ॥
सब ही बातन माहिं सदा निज दोषहि हेरी ।
या तैं उद्धत बुद्धि भई कबहूँ नहिं मेरी ॥

वेणी-संहार

या विधि कै चाकरी सबै निज वयस वितई ।

सेवा अस विरधापन मैं अन्तर नहिं भाई ॥ १ ॥

(घूमकर और आकाश की ओर देखकर)

क्या कहती है ? आर्य ! आज महारानी भानुमती ने अपने पति की संग्रामभूमि में विजय प्राप्त करने की कामना से देवों एवं गुरुजनों का पादाभिवादन करके व्रत धारण किया है । और वे इसी बालोद्यान के देव-मंदिर में बैठी हैं । अतः भद्रे तुम जाओ ! अपने कार्य में लगे । मैं यहाँ महाराज से कहे देता हूँ कि महारानी यहीं बालोद्यान में शोभित हैं ।

(घूमकर)

हे पतिव्रते ! आप धन्य हो, आप अवला होने पर भी महाराज से अच्छी हैं, क्योंकि वह आज भी प्रबल अथवा निर्बल कृष्ण-रक्षित स्व-शत्रु पाण्डवों से युद्ध करने के लिए सन्नद्ध होने पर भी विलासिता के फेर में पड़े हैं । (सोचकर) महाराज का यह भी एक अनुचित कार्य है । दम्निण—

जब सों धारयो अस्त्र परसु कुंठित नहिं बाके ।

तिन भृगुपतिहि हराय समर बाढ़यो यश जाके ॥

सोइ नृप-शन्तनु-सुवन विशिख शय्या पै सोवत ।

करत न दुख कुरुनाथ दसा तिनकी इमि जोवत ॥

पै बहु सुभटनि मारि थक्यौ अभिमनु एकाकी ।
 दई कपट सों काटि धनुषप्रत्यञ्चा जाकी ॥
 या विधि आयुध-रहित वीर पै हाथ चलावत ।
 बाल-बधन में हाय ! नाथ आनंद सरसावत ॥ २ ॥

विधाता हमारा कल्याण करें, महारानी यहीं बैठी हुई हैं । मैं
 महाराज से जाकर निवेदन किये आता हूँ ।

(प्रस्थान)

विष्कम्भक—

(आसन पर बैठी हुई भानुमती । सखी तथा चेरी का प्रवेश)

सखी—अरी सखी भानुमती ! तुम महाराज दुर्योधन सरीखे अभि-
 मानैकधन नरेश्वर की रानी होकर दुःस्वप्न मात्र के दर्शन से इस
 प्रकार धैर्यच्युत एवं सन्तप्त हो रही हो ।

चेरी—महारानी, सुवदना का कथन यथार्थ है ।

भानुमती—ठीक है, ऐसा ही है ।

चेरी—स्वप्न में मनुष्य न जाने क्या क्या बकने लगता है ।

भानुमती—बात तो ऐसी ही है परन्तु यह स्वप्न मुझे अशुभ
 प्रतीत होता है ।

सखी—प्यारी सखी ! यदि ऐसा ही है तो अपने दुःस्वप्न का
 वर्णन करो, जिससे कि हम लोग देवार्चन अथवा स्तवन के द्वारा इसकी
 प्रतिक्रिया कर सकें ।

वेणी-संहार

चेरी—महारानी ! सुवदना बहुत ठीक कहती हैं । सुना है कि दुःस्वप्न भी देवस्तवन से शुभ बन जाते हैं ।

भानुमती—यदि ऐसा ही है तो ध्यानपूर्वक सुनो, कहती हूँ ।

सखी—प्यारी ! कहो, मैं ध्यान-पूर्वक सुन रही हूँ ।

भानुमती—मैं आज जिस समय प्रमोद-वन में बैठी हुई थी उस समय मेरे समक्ष दिव्यरूपधारी नकुल ने सौ सर्पों का मार डाला ।

दोनों—(अपने आप) शान्त हो, शान्त हो । बड़ा अमङ्गल हुआ ।

भानुमती—सखी ! भय-विह्वल होने के कारण मैं भूल गई, इससे थोड़ी देर के लिए ठहर जा । मैं अभी स्मरण करके फिर सारी कथा कहूँगी ।

(चिन्ता का अभिनय करती है)

(दुर्योधन और कञ्चुकी का प्रवेश)

दुर्योधन—किसी ने ठीक कहा है कि—

गुप्त प्रकट आपुहि अपर थोरौ चहै महान ।

दंत अमित सुख शत्रु कां जां कीजै अपमान ॥३॥

क्योंकि आज भारद्वाज, रविनन्दन, सिन्धुराज आदिकों के द्वारा साभद्र-निधन का समाचार सुनकर मेरे मन की कलिका विकसित हो रही है ।

कञ्चुकी—आचार्य-प्रवर के शस्त्र-प्रभाव से कुछ भी कठिन नहीं है । कर्ण और जयद्रथ की भी कोई वास्तविक प्रशंसा नहीं है ।

दुर्योधन—विनयन्धर ! तुम क्या कहते हो छिन्नकामुक एकाकी बालक को वध करने में कौरव वीरों की कोई प्रशंसा नहीं है, क्या इसमें कोई दोष भी है ? अरे मूढ़ देख—

कै आगे पाञ्चाल सुत वृद्ध भीष्महिं मारि ।

लही पाण्डवन कीर्ति जसि हूँ है सोइ हमारि ॥४॥

कंचुकी—(साश्चर्य) महाराज आप ऐसी कल्पना न करें । आप लोगों के सारे कार्य वीरतापूर्वक होते हैं इसलिए मैंने यह कहा, दुर्योधन—ठीक है ।

सचिव, अनुज, सुत, बन्धु युत, मित्रनि को समुदाय ।

समर सुयोधन पाण्डवनि, दैहै अवसि गिराय ॥५॥

कंचुकी—(कानों पर हाथ रखकर सभय) महाराज ऐसी अमंगल-वचन रचना न कीजिए ।

दुर्योधन—मैंने क्या कह, डाला ?

कंचुकी—

सचिव अनुज सुत बन्धु युत मित्रनि को समुदाय ।

रण में पाण्डव कौरवनि दैहै अवसि गिराय ॥६॥

बिल्कुल आपने इसके विरुद्ध कहा ।

दुर्योधन—आज रानी भानुमती मुझसे बिना कहे ही प्रातःकाल रंगभवन से बाहर चली गईं, इस कारण मेरा चित्त उद्विग्न हो रहा है । मुझे तुम वह स्थान बतलाओ जहाँ रानी भानुमती इस समय हैं ।

वेणी-संहार

कंचुकी—महाराज, इधर आइए । (दोनों घूमते हैं)

कंचुकी—(सामने देखकर और चारों ओर घूमकर) महाराज देखिए यही आपके समक्ष बालोद्यान है, यहाँ पर शेफालिका-पुमन तुषार-सीकर-वलित समीरण के झोंके से पृथ्वी पर विकीर्ण हो रहे हैं, मुग्धा मुन्दरियों के हलके गुलाबी गोल कपोलों की शोभा प्राप्त करनेवाले लोध्र प्रसून, जिन्होंने श्यामलता के समूह को परास्त कर दिया है, विकसित कुन्ददलों के साथ आनन्द दे रहा है । प्रभातकाल के समय इसकी शोभा और भी अपूर्व होती है ।

देखिए और भी --

हिम औ मकरन्द मिलै नत-उन्नत, सुन्दर जासु के कोस मुहाए ।
रजनी में खिलि कुमुमावलि सङ्ग, गिरे मन मोंहि महा मुद छाए ।
दिन-नायक के कर से परसे, हूँ प्रफुल्लित सौरभ देत अघाए ।
अरविन्द के वृन्दन पैदल आपुं, मलिन्द के वृन्दन केचलि आए ॥६॥

दुर्योधन—(चारों ओर देखकर) विनयंधर ! इधर भी तो दृष्टिपात करो इसका प्रातःकालीन नितान्त रमणीक है ।

पाय विकास सभे वगरे दल, नेरे गवाछन के मग जाइ कै ।
भानु मयूखनि सो नृप लौं, लहै चेतनता तन के परसाय कै ।
संग दुरेफिनि लीने मरंद के, अंगनि में अंगराग लगाय कै ।
वा विकसी नलिनी दल सेजहिं, भौर तजै निदियाहि विहाय कै ॥८॥

कंचुकी—महाराज 'यहीं' पर महारानी भानुमती बैठी हुई हैं, सुवदना और तरलिका उनके साथ हैं। महाराज उनके पास जायें।

दुर्योधन—विनयंधर ! तुम जाकर मेरा युद्ध-रथ तैयार करो, मैं रानी से मिलकर अभी आता हूँ।

कंचुकी—जैसी महाराज की आज्ञा।

(बाहर जाता है)

सखी—हे प्रिय सखी ! क्या तुम्हें स्मरण आया ?

भानुमती—हाँ सखी ! स्मरण आया।

सखी—तो फिर कहे।

भानुमती—आज मैं बालोद्यान में बैठी हुई थी कि मेरे समक्ष एक दिव्य रूपधारी नकुल ने सौ सर्पों को मार डाला।

दोनों—(मन में) ईश्वर भला करें (प्रकट) तो फिर क्या हुआ।

भानुमती—सन्ताप-ग्रस्त होने के कारण मैं फिर भूल गई।

दुर्योधन—(देखकर) रानी भानुमती सुवदना और तरलिका के साथ कुछ वार्तालाप कर रही हैं, इससे आज इसी लता की ओट में छिपकर इनकी वार्ता सुनें।

(छिपकर खड़ा होता है)

दोनों—हे सखी, सन्ताप करने से कोई लाभ नहीं। कहिए।

दुर्योधन—इस सन्ताप का कौन सा कारण हो सकता है, सो बतलाइए। अथवा यह कि मझे बिना बतलाये हुए ही प्रातःकाल

वेणी-संहार

स्रय्याग्रह से चली गई थीं, इसलिए यह कष्ट है । अरी प्रिये भानुमती !
दुर्योधन तुम्हारे क्रोध का भाजन नहीं है ।

भूलिहू भामिनि सांची कहों, भुज-पास को ढीलो कियो कबौ नाहीं ।
त्यों न करौट के लेत कहा, भरि अंक समोड़ लियो उरमाहीं ॥
सेवत में सपनो धौं लख्यौ, कहूँ आन तिया के दिये गर-बाहीं ।
कीन्हों उरहानो जोग कहा, अपराध धौं कौन भयो हम पाहीं ॥ ९ ॥

(सोचकर)

मोहीं में यह रहति निज ही चित्त लगाये ।
तन मन धन सेां प्रिया प्रेम के भाव बढ़ाये ॥
निहचै रूसी वाल जग्यो हिय नेह घनेरौ ।
अथवा नैननि लख्यौ दांप कोऊ इन मेरौ ॥ १० ॥

तौ भी सुनें, यह क्या कहती हैं ।

भानुमती—तब तो उस दिव्य-वपु नकुल को देखने के लिए
मेरा हृदय उद्विग्न हो उठा ।

दुर्योधन—क्या कहा ! दिव्याकृति नकुल को देखकर यह उत्सुक
हो गई । इस कुलटा ने माद्री के तनय पर अनुरक्त होकर मेरे
साथ विश्वासघात किया । (उपेक्षा के सहित) “मांही में यह रहति”
इत्यादि पढ़ता हुआ । मूढ़ दुर्योधन ! इस भामिनी ने तुम्हें धोखा
दिया, तू इसी से अपने को धन्य मानता था ? अच्छा अब क्या कहता
है । (“भूलिहू भामिनि” इत्यादि पढ़ता हुआ एक ओर देख कर)

समझ गया इसी कारण यह प्रातःकाल सहेट में चली आई, और इस प्रकार अपनी समयस्का सहेलियों से बातें करने में तनमनस्क हो रही है। अरे दुर्योधन ! तू मोहवश ही अब तक इसके हृदय की बात न जान सका, और इस प्रकार भ्रम में पड़ा रहा ? अरी पापिष्ठे ! विवाहिता होते हुए भी कुमार्ग में प्रवृत्त है।

कहँ यह तिय-जन-सुलभ भीरुता रुचिर घनेरी ।
 कहाँ ढिठाई करति मोहिं निज सम्मुख हेरी ॥
 कह मम तनहि सराहि वचन रचना मृदु भाखत ।
 विनय विघातक पंथ माहि कहँ इमि पग राखत ॥
 अति उदारता रहति कहाँ मोपै दरसाये ।
 कहाँ मंदमति नकुल माहिँ अनुराग लगाये ॥
 सो कारी करतूति अरी मन भावति तेरी ।
 भई विमल विधुवंश माहिँ अपयश की ठेरी ॥ ११ ॥

सखी तो फिर क्या हुआ ।

भानुमती—तो फिर मैं इसी लतामण्डप में चली आई, और मेरे पीछे वह नकुल भी यहीं चला आया ।

दुर्योधन—अब तो इसकी प्रगल्भता और निर्लज्जता कुलटा के समान हो गई—

दम्पति नेह नहीं बतियाँ, चिरकाल से जो मन मोह बढ़ावत ।
 बैठि इकंत में आलिन को, अनुराग रँगी जिन्हें आपु सुनावत ॥

वेणी-संहार

तू तिन संग निसंक वनी, चरचा पर प्रेम की हाथ चलावत ।
ढीठ धौं ऐसी कहाँ सो भई, कुलटा इव तो कहँ लाज न आवत॥१२॥

दोनों—तो फिर क्या हुआ ।

भानुमती—तब उमने अपना पाणिपल्लव आगे बढ़ाया और मेरा अंचल खींचा ।

दुर्योधन—(सोचकर) अरे प्रगल्भतापूर्वक हाथ बढ़ाकर इसका आंचल खींचा (सक्रोध) अब अधिक सुनना व्यर्थ है यह स्त्री दोषी है । इस पापी माद्रीपुत्र को अभी प्राणदण्ड दूँ (कुछ चलकर और सोचकर) अच्छा पहले इसी पापिनी को मारूँ—

(लौटता है)

दोनों—तो फिर क्या हुआ ?

भानुमती—इसके अनन्तर महाराज का प्रभात-मंगलवाद्य बजा और उसके साथ वारांगनाओं का मधुरालाप मेरे कर्णगोचर हुआ, और मेरी निद्रा भंग हो गई ।

दुर्योधन—अरे जग गई, यह तो अपनी स्वप्नदशा का वर्णन करती मालूम हांती है (सोचकर) सखी की बातों से सारा रहस्य खुल जायगा ।

दोनों—(विपाद के साथ एक दूसरे को देखती हैं) ।

सुवदना—तो जो कुछ भी स्वप्नदर्शन में अमङ्गलता प्रतीत होती है वह जाह्नवी प्रमुख सरिताओं के पवित्र जल से दूर कर दी जाय, ब्राह्मणों

के आशीर्वाद से अथवा जाज्वल्यमान अग्नि में आहुतियों से नष्ट की जाय, यह हमारी अभिलाषा है ।

दुर्योधन—अब तो सन्देह का कोई अवकाश नहीं, इसने अपने स्वप्न-दर्शन का वर्णन किया था परन्तु मैंने मूर्खतावश कुछ और ही समझा था ।

आधो यदपि प्रसङ्ग मुनि क्रोधं लुयो सव गात ।

पुरुष वचन पै नहिं कह्यो भली भई सो बात ॥

भली भई सो बात काज अनुचित नहिं कीनौ ।

धारि हिये में धीर लोक अपयश नहिं लीनौ ॥

भयौ कथा के अन्त मूढ़ मन मोहिं समुझाई ।

भूठौ दोष लगाय नहीं तिय मारि गिराई ॥१३॥

भानुमती—अरी सखी ! वतलाओ इसमें कौन सी बात अमङ्गल-सूचक है ?

सखी और दासी—(एक दूसरे की ओर देखकर एक ओर) इसमें तो अणुमात्र भी शुभ-सूचक नहीं है, यदि मैं असत्य कहूँ तो अपराधिनी बनूँ, हितैषी वही जो हितसूचक अप्रिय वार्ता को कह दे । (प्रकट)

यह सब का सब अशुभ है । अतः देवार्चन अथवा दूर्वादिक के परिग्रह से इसका निवारण किया जाय । पण्डितों का मत है कि सिंह, नकुल तथा शत शर्पों के वध का, स्वप्न दर्शन अच्छा नहीं होता ।

दुर्योधन—सुवदना ने बहुत ठीक कहा । नकुल के हाथ सौ शर्पों का वध, अञ्जल का अपहरण मैं अच्छा नहीं समझता हूँ ।

वेणी-संहार

नितहि सुभासुभ स्वप्न ये, क्रम सों मोहिं दिखात ।

करत तऊ कम्पत हियो, सौ भाइन की बात ॥१४॥

(वाम विलोचन का स्फुरण दिखलाकर)

अरे क्या सुभ दुर्योधन को भी ये दुःस्वप्न दुःख दे रहे हैं, अहंकार कातर मनुष्यों के हृदय को मथ डालनेवाले इन दुःस्वप्नों को दुर्योधन क्या समझता है। ऋषिप्रवर अङ्गिरा ने भी तो यही कहा है।

गृह-चरित्र, अरु सपन पुनि, अनदेखे उतपात ।

होत काकताली सरिस, बुध जन नाहिं डरात ॥१५॥

इसलिए भानुमती की अबला सुलभ आशङ्का को नष्ट करूँ ।

भानुमती—अरी सखी देख भगवान् भास्कर उदय हुए, इनके रथ ने उदयाचल की मेखला को कितनी दूर पर छाँड़ दिया है। सन्ध्या-राग के मलिन होने के कारण आलोक-मण्डल स्वच्छ हो रहा है।

सखी—हाँ, महारानी निकप पर कसे हुए सुवर्णपात्रों के सदृश लताओं के बीच से अंशुमालाओं से उद्यान-भूमि को पीतवर्ण बनाते हुए भगवान् भास्कर अपना प्रचण्ड प्रताप दिखला रहे हैं, इनकी ओर उसी प्रकार देखना कठिन है जैसे किसी पूर्ण प्रतिज्ञ बलशाली की ओर। अतः तुम्हें इस समय रक्त चन्दन एवं फूलों से अर्घ्य देकर पूजन करना चाहिए।

भानुमती—अरे तरलिके ! मेरा अर्घ्यभाजन ले आओ जिससे मैं भगवान् सहस्ररश्मि की पूजा करूँ ।

चेरी—महाराणीजी की जैसी आज्ञा हां ।

(जाकर फिर लौटती है)

स्वामिनी ! अर्घ्य-पात्र ले आई । आप भगवान् भुवनभास्कर की पूजा करें ।

(पूजा करती है)

दुर्योधन—प्यारी के समीप जाने का सबसे अच्छा अवसर यही है ।

सखी—(देखकर अपने आप) अरे महाराज आ गये, शोक ! अब तो इनका व्रत भङ्ग अवश्य ही होगा ।

भानुमती—(सूर्यनारायण की ओर खड़ी होकर) भगवान् ! आकाश-महामरोवर के एक कमल, सकल भुवनों के एक रत्नदीपक मेरे स्वप्न-दर्शन में जो कुछ भी अनिष्ट हो वह आपके प्रणाम करने से शतवान्धवों सहित आर्यपुत्र के कुशल परिणाम में परिणत हो जाय । अरी तरलिके! अन्य देवताओं की पूजा के लिए फूल ले आओ (यह कहकर हाथ फैलाती है) ।

दुर्योधन—(संकेत से परिचारिकाओं को हटाकर स्वयं फूल ले जाता है, और स्पर्श-सुख अनुभव करके फूलों को पृथ्वी पर गिरा देता है) ।

भानुमती—(सरोत्र) परिचारिकाओं का यह प्रमाद । (घूमकर और देखकर) क्या आर्यपुत्र हैं ?

वेणी-संहार

दुर्योधन—देवी यह दास सेवा-कार्य में सर्वथा अनभिज्ञ है, इसे आप दण्ड दें ।

(भानुमती लज्जित होती है)

दुर्योधन—

अरी प्यारी,

धैल मुकेश्यन सेां हूँ रही, अति आयत दीरघ औ अनियारी ।

केमल लोयनि सेां यहि दास के, देखिए हीय के संझम टारी ।

कीजिए त्यों मधुरी बतियाँ, मम सौन सुधा सरसावन वारी ।

प्यारी तुम्हें अभिवादन के, कर अंजुलिया हुलसात हमारी ॥१६॥

भानुमती—महाराज ! यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं अपना व्रत पूर्ण करूँ, क्योंकि मुझे इसके लिए बड़ी अभिलाषा है ।

दुर्योधन—मैंने तुम्हारे स्वप्न दर्शन का सुविस्तृत वर्णन सुना है, अब इस निःसर्ग-केमल-कान्त कलेवर के व्यर्थ दुःख न दो ।

भानुमती—आर्यपुत्र ! मुझे शंका बहुत दुःख दे रही है, इसलिए महाराज मुझे आज्ञा दें ।

दुर्योधन—(साहंकार) देवी ! शंका करना व्यर्थ है—देखो

मेदिनी के मंडल कँपाय दिश दिश छाया,

वाहनी के अमित अतंकहूँ अथै गयौ ॥

त्योही अंगराज गुरु द्रोणहूँ के वानन के,

प्रबल प्रताप नहिँ जानिए कितै गयौ ॥

भाभी लगौ आपु सतबन्धु कुरुनन्दन की,

जिन भुज बल को प्रताप जग में छुयौ ॥
या विधि लखात भयभीत भीरु जांपै हाय,
जाया कुरु सिंह की कहाइवो वृथा भयौ ॥१७॥

भानुमती - आर्यपुत्र आपके रहते रहते मेरी शंका का कोई कारण नहीं है, किन्तु मेरी यही अभिलाषा है कि आपके मनोरथ पूर्ण हों ।

दुर्योधन—अरी सुन्दरी ! मेरी तो यही अभिलाषा है, कि मैं प्यारी के साथ स्वच्छन्द विहार करूँ ।

प्रेम के बन्ध सेां डीठि लगाय कै, जाकी लखी सुखमाहि घनेरी ।
लाजनि सौं मधुरे सुसकाय, बनै कहतै न कथा बहुतेरी ॥
धारन सेां व्रत के अधरानि पै, लाख कौ राग परै नहिं हेरी ।
वा सुख चन्द-अमीरस-पान कौ, साध बड़ी दुर्योधन केरी ॥१८॥

(नेपथ्य में केलाहल सब सुनते हैं)

भानुमती—(सभय राजा से लिपटकर) आर्यपुत्र बचाओ, बचाओ ।

दुर्योधन—(चारों ओर देखकर) प्रिये, क्यों डरती हो—
देखो तो सही—

प्रबल पवन तरु-पातन सौं दसहू दिशि छावत ।
पुनि वन युतलै धूम-दण्ड नभ ओर बढ़ावत ॥
करि भीषन भनकार कवहुँ यह मग में धावत ।
पुनि सधूम ह्वै जात सवै विटपनि रघसावत ॥

वेणी-संहार

कहूँ भूपति सौध निकुञ्ज महँ चलहि घोर रव को करत ।

धुनि निकट जासु की कान कर भीरु प्रिया व्यर्थहि डरत ॥१६॥

सखी—महाराज इस दारु-पर्वत-प्रासाद में प्रवेश करें । देखिए यह भ्रूभानिल कितना भयङ्कर है, इसने सबको दुःखित कर रक्खा है, नेत्रों में रजःकरण पड़ने से किरकिराहट होने लगी है । वृत्तों के उखड़ने का भयङ्कर शब्द सुनकर अश्वशाला से वाजि-राजि बन्धन तोड़कर निकल आई है, जिसके कारण लोगों के राजमार्ग पर चलना भी कठिन हो गया है ।

दुर्योधन—इस भ्रूभावायु ने भी मेरा उपकार किया, इसी के प्रसाद से प्यारी ने अनायास ही अपना व्रत भङ्ग करके मेरा मनोरथ पूर्ण किया ।

देखो—

चाप लौं भौहैं चढ़ाई नहिं, अँसुआ उमगे नहिं आँखिन आई ।

फेरौ न आनन को, छुवतै ही, निवारन मैं नहिं सौँह धराई ।

गात ही कै पर से उर सों डर, जोरि मिली भय वेग सताई ।

पौन प्रिया-व्रत-खण्डन-हार, भयौ यह मीत लौं आय सहाई ॥२०॥

अतः मेरी समग्र अभिलाषा पूर्ण हुई, अब तो मैं इसके साथ स्वच्छन्द विहार करूँगा, आओ इसी दारु-पर्वत-प्रासाद ही में चलें ।

(भ्रूभावात की पीड़ा निवारण करते हुए चलना)

दुर्योधन—

हरये धरो पग भूमि पै,
 रम्भोरु मो सिख मानिकै ।
 तज दीजिए तन कम्प के,
 मोहि आपने सङ्ग जानि कै ।
 भुज बेलि मोगर मेलि त्यों,
 भरि अङ्क तुम भेंटौ हमै ।
 सव छाँड़ि कै सङ्कोच कौ,
 घन गाढ़ आलिङ्गन समै ॥२१॥
 (प्रवेश का नाट्य दिखाकर)

इस राजप्रासाद के चारों ओर से टके होने के कारण प्रचण्ड पवन इसमें सहसा प्रवेश नहीं कर सकती । अतः तुम अपने नेत्रों से रजः-कणों को निकालकर उन्हें बेधड़क खोलो ।

भानुमती—(सहर्ष) बड़े आनन्द का विषय है, कि यहाँ पर प्रभञ्जन हमें दुःख नहीं देता ।

सखी—चञ्चलता से चलने के कारण हमारी प्रिय सखी की टाँगें थक गई हैं, महाराज ने भी तो अभी तक आसन ग्रहण नहीं किया ।

दीर्घ आयत आँखिन मैं, रज कौ कन पीर खरी उपजावत ।
 ऊँचे उतंग उरोजनि पै, लघुकम्प हिये के हरा के हलावत ॥

वेणी-संहार

धीरेहु पाँव धरा पै धरे, धने जङ्घ खरो तन कम्प जनावत ।
खेद है दूबरी भामिनि के, अङ्ग-अङ्ग समीर-सुखावनि आवत ॥२२॥
(सब बैठे हैं)

दुर्योधन—आप क्यों बिछाये हुए शिलातल पर ही बैठ गई ।

इन नैनन मुखदैनि चपल चल अञ्चल वारी ।

जो तुव जङ्घा सधन-रम्भ-मद-मोचन-हारी ॥

ताके आसन काज चपल चञ्चल पट वारी

तो मन मोहन हारि पृथुल जङ्घा मम प्यारी ॥२३॥

(परदे को उठाकर कञ्चुकी का प्रवेश)

महाराज ! तोड़ दिया, तोड़ दिया ।

(सब सातङ्क मुनते हैं)

दुर्योधन—किसने ?

कञ्चुकी—भीम ने ।

दुर्योधन—क्या प्रलाप करता है ?

भानुमती—आर्य आप अनिष्ट की सम्भावना क्यों कर रहे हैं ?

कञ्चुकी—महाराज ! कहता हूँ भीम ने आपका तोड़ दिया ।

दुर्योधन—अरे प्रलापी ! वृद्धापसद ! तुझे धिक्कार है, तुझे आज क्या हो गया है ?

कञ्चुकी—मेरा कोई भी प्रलाप नहीं है ।

भीम पवन भञ्जन कियो तव रथ-केतन आय ।

करत किङ्किनी रव मनौ भूमि परी विलखाय ॥२४॥

दुर्योधन—प्रबल-प्रभञ्जन के वेग से सारा संसार प्रकम्पित होने पर यदि रथ की ध्वजा टूट गई तो वृथा प्रलाप क्यों करते हो ?

कञ्चुकी—महाराज हुआ तो कुछ नहीं, परन्तु इस अशकुन की सूचना आपको देनी थी । अतः मैंने स्वामि-भक्ति के भाव से प्रेरित होकर ऐसा किया ।

भान्मती—आर्य, आप इस अशकुन को वेदपाठी प्रसन्न ब्राह्मणों के आशीर्वाद से दूर करें ।

दुर्योधन—(अवज्ञा के साथ) जाओ पुरोहित, सुमित्र को सूचना दे दो ।

(प्रतिहारी का वेग से जाना और लौट आना)

महाराज की जय हो, जय हो । इस समय जामाता जयद्रथ की माता और दुःशला आदि द्वार पर खड़े हुए हैं ।

दुर्योधन—(कुछ सोचकर अपने आप) क्या सिन्धुराज की जननी एवं भगिनी दुःशला इत्यादि द्वार पर खड़े हुए हैं ? क्या ऐसा तो नहीं हुआ कि अभिमन्यु-वध के क्रोध से पाण्डवों ने हमारा अनिष्ट कर डाला हो (प्रकट) जाओ उन्हें अभी ले आओ ।

प्रतिहारी—जैसी महाराज की आज्ञा हो ।

(जाता है)

(घबराई हुई जयद्रथ की माता और दुःशला का प्रवेश)

वेणी-संहार

देनों—(आँखों से अश्रुधारा बहाती हुई देनों दुर्योधन के पैरों पर गिरती हैं)

माता—कौरवेश्वर ! रक्षा करो, रक्षा करो ।

(दुःशला विलाप करती है)

दुर्योधन—(घबराहट के साथ उठकर) माता ! धैर्य धारण करो, तुम क्या कहती हो । संग्रामभूमि में महारथी जयद्रथ कुशल से तो हैं ।

माता—अरे पुत्र, कुशल कहाँ !

दुर्योधन—सो कैसे ?

माता—(सशंक) आज पुत्र-वध से दुःखित गांडीव-धारी ने सूर्यास्त से पहले उसके मारने की प्रतिज्ञा की है ।

दुर्योधन—(हँसकर) अरी माता ! और दुःशला ! राने का यही कारण है । क्रोधकातर किरीटी के प्रलापों से तुम्हारी यह अवस्था । स्त्री भी कैसी अबला होती हैं । माता अब दुःखी मत हो, दुःशले विलाप मत करो । धनञ्जय की क्या शक्ति है कि दुर्योधन की प्रांशु-भुजाओं से रक्षित महाराज जयद्रथ का कुछ भी अनिष्ट कर सके ।

माता—बन्धु-बान्धवों के वध से उनका क्रोध-कृशानु भड़क रहा है इसलिए अब वह अपने शरीर की भी चिन्ता न करके संग्राम में निर्भय विचरण कर रहे हैं ।

दुर्योधन—(हँसकर) ऐसा ही है, पाण्डवों का क्रोध तो सबको विदित है । देखो न --

आयसु पाय जबै द्रुपदी को, गह्यो पट-केश दुशासन वारौ ।

भूपति की तनया ने सभा में, कह्यौ 'हौं गऊ मोहिं पाहि निवारौ॥'

ता समै गोन्यौ कहाँ वह भीम, कहाँ वह गांडीव धारनहारौ ।

का वह क्षत्रिय वंशज कौ, न हतौ खरो रोष जगावनहारौ ? ॥२५॥

माता—अर्जुन ने यह भी प्रतिज्ञा की है कि यदि मैं जयद्रथ को न मार सकूँ, तो स्वयं मर जाऊँगा ।

दुर्योधन—यदि ऐसा ही है तो आनन्द के समय पर विषाद करना व्यर्थ है । सानुज युधिष्ठिर बातें बनानेवाले हैं । माता ! दूसरी बात यह है कि अर्जुन की अथवा और किसी की क्या शक्ति है, कि कौरव-परिवार से महत्त्व पानेवाले तथा कृपाचार्य, कर्ण, द्रोण, अश्वत्थामा आदि महारथियों से द्विगुणित प्रभावशाली आपके पुत्र का कोई भी किंचित् मात्र अनिष्ट कर सके । आपको अपने पुत्र के पराक्रम का परिचय नहीं है ।

धर्म नरेश की बात कहा, न धनंजय आपु सकै समुहाई ।

भीमहुको बल व्यर्थ जहाँ, नकुलौ सहदेव की कौन चलाई ॥

कोऊ हमें नहिं वीर लखात, अकेलो करै जो पै आनि ललाई ।

जा समै सिन्धु महीप बली, धनु तानि के संगर में जुरे आई ॥२६॥

भानुमती—आर्यपुत्र ! यदि ऐसा ही है फिर भी अर्जुन ने बड़ी भयङ्कर प्रतिज्ञा कर डाली है, इससे हृदय भयभीत हो रहा है ।

माता—ठीक है, तुमने सम्योचित बात कही ।

दुर्योधन—अरे मुझ दुर्योधन को पाण्डवों का भय ! देखो—

वेणी-संहार

धारत रुचिर चाप—सिञ्जनी की रेख देह,
कवच बिना ही मथ्यौ रिपु समुदाई है ।
जिनके रघसि सित-छत्र एक दूसरे सों,
स्वेत-अरविन्द-वन-भ्रान्ति उपजाई है ।
या विधि हमारे—सत-बन्धुन-बलित-सैन,
करत प्रहार करवाल को उठाई है ।
धूरि में छिपे से दिननाथ की प्रभा को पारि,
दिश दिश घेरत चहुँघा चलि आई है ॥ २७ ॥

भानुमती ! और भी सुनो, तुम्हें तो पाण्डवों का प्रभाव भली
भाँति ज्ञात ही है, क्या तुम भी ऐसी आशङ्का करती हो । देखो—

उर फारि जिन मम अनुज को प्रण कीन शोणित-पान को ।
धारी गदा सों जिन बहुरि मम जङ्घ तोरन आन को ॥
तिन विपुल बल धन पाण्डवनि नैं आजु लौं जैसी कही ।
रन में जयद्रथ-निधन की ऐसी प्रतिज्ञा है यही ॥ २८ ॥

अरे कोई यहाँ है ? मेरा जैत्र रथ अभी सुसज्जित करो, मैं उस
मिथ्या-प्रतिज्ञ प्रगल्भ पाण्डवाधम के प्रण को जयद्रथ के रक्षण से ही
व्यर्थ करके अभी उसकी बिना शस्त्राघात के ही अपवित्र मृत्यु को
करता हूँ ।

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी—महाराज !

अति खाँँ मग हृद का बजत कल-हेम-घण्टा जासु ।
चलन में सुठि हार लौं यह हँसत चामर तासु ॥
अति चपल चञ्चल गति, लगे हैं अश्व जामे दोय ।
वैरी-मनोरथ-निधन साज्यौ नाथ को रथ सोय ॥ २९ ॥

(सब का प्रस्थान)

द्वितीय अङ्क समाप्त ।

तृतीय अंक

(विकृतवेषा राक्षसी का प्रवेश)

राक्षसी—(विकृत हास्य के साथ सपरितोष)

मिलत भोजन रुचिर जामें मृत मनुज के मांस ।

रुधिर मज्जा मेद सों बहु कलस पूरि सहास ॥

सद्य सोनित-पान जामें नितहि लहत अश्वार ।

कुरु-पाण्डवनि के सतवरस लों होय यह रन घोर ॥ १ ॥

(सन्तोषपूर्वक नाचती हुई) यदि सिन्धुराज के वध-दिवस के समान ही पार्थ अपना प्रतिदिन ही पराक्रम दिखलाता रहे, और ऐसा ही घोर संग्राम करे तो मेरे गृह का प्रत्येक कोठार मांस और शोणित से परिपूर्ण हो जाय । (घूमकर और चारों ओर देखकर) पता नहीं कि मेरा प्यारा रुधिरप्रिय आज कहाँ चला गया है, तो तब तक उसे इसी संग्राम-भूमि में ढूँढ़ लूँ, अच्छा पुकारती हूँ । अरे रुधिरप्रिय, अरे रुधिरप्रिय आओ ।

(राक्षस का प्रवेश)

राक्षस—(घूमने का अभिनय करते हुए)

तुरत हतै नर के मिलै, रुधिर मांस भरपूर ।

तो या मो तन की बिथा, होय छनक में दूर ॥२॥

राक्षसी—फिर पुकारती है

राक्षस—(सुनकर) अरे मुझे कौन बुलाता है ! (देखकर) क्या वसागंधा है ? (निकट जाकर) अरी वसागन्धे ! मुझे क्यों पुकारती है ?

सोनित आसव प्राप्त करन सन ह्वै मतवारी ।

राखे तन मा भ्रमत बड़ी शिथलाई भारी ॥

री प्रिय भामिनि कहहु मोहि केहि काज पुकारे ।

मुनियत नैनिक अयुत गये अबहीं इत मारे ॥ ३ ॥

राक्षसी—रुधिरप्रिय ! यह मैं तेरे लिए अभी मारे गये किसी राजर्षि का मेद-चिकण और रुधिर सहित अग्रमांस लाई हूँ, इसे पी ले ।

राक्षस—(सपरितोष) वाह वसागन्धे ! वाह तुमने बड़ा अच्छा किया, मुझे बड़ी प्यास लगी थी ।

राक्षसी—रुधिरप्रिय ! यह तो बड़े आश्चर्य की बात है । तुम इस युद्धभूमि में भी घूमते हुए प्यासे रहे । देखो, इसमें मारे गये नरों-गंजों और तुरंगों का शोणित-समुद्र उमड़ रहा है, जिससे इधर-उधर जाना कठिन हो गया है ।

राक्षस—(क्रोध करके) अरे सुस्थिते ! घटोत्कच ऐसे पुत्र-वध के शोक के कारण सन्तसहृदया स्वामिनी हिडिम्बादेवी को धैर्य बँधाने गया था ।

राक्षसी—रुधिरप्रिय ! क्या अब भी स्वामिनी हिडिम्बादेवी को घटोत्कच के मरने का शोक शान्त नहीं हुआ ?

वेणी-संहार

राक्षस—अरे उसको शान्ति कैसे हो ? उसे द्रौपदी और सुभद्रा देवी धैर्य बँधा रही हैं, क्योंकि उन्हें भी अभिमन्यु के मारे जाने का उतना ही शोक हो रहा है ।

राक्षसी—रुधिरप्रिय ! तुम इस गजगंडस्थल में संचित अग्रमांस का भोग लगाओ और ऊपर से रक्तासव का भी पान करो ।

राक्षस—(वैसा ही करके) वसागन्धे ! अरे तूने कितने घड़े रुधिर और अग्रमांस सञ्चित किया है ।

राक्षसी—रुधिरप्रिय ! पूर्व संचय का तो तुम्हें पता ही है, अब नव सञ्चय का हाल सुनो । भगदत्त के शोणित का एक घड़ा, जयद्रथ के शोणित के दो घड़े, विराट, भूरिश्रवा, सोमदत्त, बाह्योक प्रमुख राजाओं के रुधिर मांस के ये असंख्य घड़े मेरे घर में रक्खे हुए हैं ।

राक्षस—(परितोष के साथ आलिंगन करके) अरी गृहिणी ! तूही धन्य है, तू गृह-प्रबन्ध में बड़ी निपुण है । तेरे इस कार्य से हिडिम्बादेवी के समान मेरा जन्मदारिद्र्य नष्ट हो जायगा ।

राक्षसी—रुधिरप्रिय ! स्वामिनी ने कौनसा ढंग बतलाया ?

राक्षस—वसागन्धे ! स्वामिनी हिडिम्बादेवी ने मुझे बड़े प्रेम से बुलाया और आज्ञा दी कि आज से तुम आर्यपुत्र भीम के पीछे संग्राम-भूमि में घूमते रहना, क्योंकि उनके पीछे रहने से मारे हुए मनुष्यों की रुधिर-सरिता के अवलोकन से तुम्हारी रक्त-पिपास केवल नष्ट

ही न होगी प्रत्युत यह पृथ्वी ही तुम्हारे लिए स्वर्ग हो जायगी, और तुम भी निश्चित होकर रक्त और मज्जा से सहस्रों कलश भर कर रख लेना ।

राक्षसी—कुमार भीमसेन के पीछे रहने का क्या प्रयोजन ?

राक्षस—इसका कारण यह है कि स्वामी वृकोदर ने दुःशासन के वक्षःस्थल से रुधिर पीने की प्रतिज्ञा की है । तो हम राक्षसों को भी उसमें घुसकर रक्त पीना चाहिए ।

राक्षसी—(सहर्ष) स्वामिनी धन्य है । तुमने मेरे पति को बड़ा अच्छा ढंग बतलाया है ।

(नेपथ्य में महान् कलकल) दोनों सुनते हैं ।

राक्षसी—(सभ्रम सुनकर) अरे रुधिरप्रिय ! यह घोर केलाहल कहाँ से सुनाई पड़ता है ?

राक्षस—(देखकर) अरी वसागंधे ! यह धृष्टद्युम्न है, जिसने द्रोणाचार्य के बाल खींचकर खड्ग से उनका सिर काट डाला ।

राक्षसी—(सहर्ष) रुधिरप्रिय ! रुधिरप्रिय ! उस ओर चल कर द्रोणाचार्य का रुधिर पान करें ।

राक्षस—(सभय) अरी वसागंधे ! यह ब्राह्मण का रक्त है, इससे कंठदाह उत्पन्न हो जायगा, तो इससे क्या मतलब ।

(नेपथ्य में फिर घोर केलाहल)

राक्षसी—रुधिरप्रिय ! फिर घोर केलाहल सुनाई पड़ने लगा ।

वेणी-संहार

राक्षस—(नेपथ्य की ओर देखकर) यह तो कृपाण-पाणि अश्व-
त्थामा है और इसी ओर आ रहा है । कहीं ऐसा न हो कि यह क्रोध से हमारा
ही वध कर डाले, इससे आओ हिडिम्बादेवी की आज्ञा का पालन करें ।

(दोनों का प्रस्थान)

(खड्ग खींचे हुए, केलाहल को मुनते हुए अश्वत्थामा का प्रवेश)

अश्वत्थामा—

प्रेरित प्रभंजन प्रबल सो जनु पुरष्करावर्तक लये ।

पुनि निज निविड़ निःस्वान प्रतिध्वनि पूरि दिग्मण्डल दये ॥

या श्रवन भैरव घोर-रव भूकंदरा में जो भरयो ।

सो समर सागर को कुलाहल कान धौं कहँते परयो ॥ ४ ॥

(सोचकर) निश्चय ही धनंजय, सात्यकि, वृकोदर इत्यादिकों
ने अपने यौवन-दर्प के कारण मर्यादा का उल्लंघन किया है ।
इसी लिए क्रोध करके मेरे पिता ने शिष्य-प्रियता को छोड़कर अपने
स्वभाव के सदृश भीषण संग्राम कर दिया है ।

करि दुर्योधन महीपति को पक्षपात,

धारि अस्त्र जोक अनुरूप बल पाग्यो है ।

आयुध सकल पाय गुरु भृगुनंदन सों,

घोर निज विक्रम दिखैवे अनुराग्यो है ।

हैं कै गुरु सकल धरा के धनधारिन को,

ताते हिय अमित प्रचण्ड रोप जाग्यो है ।

वन्दनीय तातु रिपु-बल-धमराज कोपि,
अरि-सैन अवसि मथन आज लाग्यो है ॥ ५ ॥

(पीछे देख कर) अरे कोई मेरा रथ लाओ ! अथवा रथ की प्रतीक्षा करना व्यर्थ है । अस्त्र तो मेरे पास है ही, इसलिए नूतन पयोधर-प्रभा-भासुर स्वर्ण-मुष्टिका-युक्त करवाल को लेकर युद्धभूमि में पदार्पण करूँ (घूमकर, बाँई आँख फड़कने की सूचना होते हुए) अरे समर-महोत्सव में आनन्द लेनेवाले एवं पिता के प्रबल पराक्रम की इच्छा करनेवाले अश्वत्थामा को समरभूमि के विघ्न निवारण करते हैं, कोई बात नहीं, अभी जाता हूँ । (अहंकार के साथ घूम कर और आगे देखकर) यह तो संग्रामभूमि से भागी हुई गज-तुरंग-संकुलित सेना का घोर कालाहल सुनाई पड़ता है । इन लोगों ने क्षत्रिय धर्म का घोर अपमान किया है । सत्पुरुषांचित लज्जा को तिलाञ्जलि दे दी है, स्वामी-सत्कार को इन तुच्छों ने बिल्कुल भुला दिया है । (देखकर) हा धिक्कार है, बड़ा कष्ट हुआ । अरे यह कर्णादिक महारथी भी संग्रामभूमि से विमुख होकर भागे जाते हैं । (शंकित होकर) क्या मेरे पिता ऐसे सेनानायक के होते हुए भी इनकी ऐसी दशा है ? अरे कौरव-सेना-महार्णव-बेला की रक्षा करने-वाले राजाओ ! ठहरो, संग्राम से न भागो ।

छाँड़ि समर को खेत मीचु-भय जो नहिं होई ।

तो हँवो रण-विमुख उचित भाखै सब कोई ॥

वेणी-संहार

तनुधारिन कौ मरन अहै निहचै जगमाहीं ।
करिबो याते जसहिं मलिन कैसेहु भल नाहीं ॥६॥

(और भी)

आयुधनि ज्वाला सां भरयो है रिपु सैन सिन्धु,
ताहि बड़वागि लौं करत छार जौन है ।
सारे धनुधारिन के गुरु मो जनक आजु,
हूँ कै सैन नाथ रणधुर सज्यौ गौन है ।
छाड़ि के हिये को सङ्ग कृप समुहात क्यों न,
करन न जात क्यों गह्यो धौं इमि मौन है ।
चाप ही सहाय तात आगे हूँ लरत आपु,
ऐसे समय भीति को प्रसङ्ग कहौ कौन है ॥७॥

(नेपथ्य में)—क्या तुम्हारे पिता अब भी कहीं हैं ?

अश्वत्थामा—(सुनकर) क्या कहता है कि मेरे पिता अब भी कहीं हैं । अरे क्षुद्र समर-कातरो ! इस प्रकार अनर्गल प्रलाप करते हुए तुम्हारी जिह्वा के सहस्र खण्ड क्यों नहीं होते ।

विश्व के दहन काज तोखन मयूखन सां,
द्वादस आदित्यज्वाल माल उदये नहीं ।
त्योही उनचासहूँ प्रभञ्जन प्रकोपि भूरि,
दस दिसि धूरि अन्धकारन छये नहीं ।

पुष्कर-अवर्तक-सो प्रबल पयोद आजु,

देखौ नभ-मण्डल मैं कौहूँ उनये नहीं ।

जनक-निधन की चलावत कथा हौ तुम,

अब ही प्रलय के ठान एक हू ठये नहीं ॥८॥

(आहत हुए भयभीत सूत का प्रवेश)

सूत—कुमार ! रक्षा कीजिए । (पदावनत होता है)

अश्वत्थामा—(देखकर) अरे यह कैसे, तुम तो मेरे पिता के सारथी अश्वसेन हो । आर्य ! आर्य ! तुम उन महानुभाव के सारथी हो जिनमें त्रैलोक्य-परि-रक्षण की क्षमता है । मैं तुम्हारा परि-त्राण क्या करूँ ?

सूत—(उठकर करुणा के सहित) कुमार, अब आपके पिता कहाँ हैं ?

अश्वत्थामा—क्या पिता नहीं हैं ?

सूत—और क्या ।

अश्वत्थामा हाय पिता कहकर मूर्च्छित हो जाता है ।

सूत—कुमार धैर्य धरो, धैर्य धरो ।

अश्वत्थामा—(अचेत होकर और आँखों में आँसू भरकर) हाय सुत-वत्सल पिता, हाय तीनों लोकों में अद्वितीय धन्वी, हाय भृगुराम के विनीत छात्र ! आप कहाँ चले गये, मुझे उत्तर क्यों नहीं देते ।

वेणी-संहार

सूत—कुमार अत्यन्त शोक न करो, अपने पिता के वीरोचित गति प्राप्त करने पर तुम भी उसी प्रकार पराक्रम दिखलाकर शोक-सागर को पार करो और सुख प्राप्त करो ।

अश्वत्थामा—(आँखों में आँसू भरकर) आर्य ! कहिए कहिए, ऐसे अप्रमेय पराक्रमशील मेरे पिता का देहान्त कैसे हुआ ?

कै गुरु दच्छिना में प्रिय भीम, पिता सिर कोपि गदा गुरु भारी ?

सूत—नहीं, नहीं ।

अश्वत्थामा—

कै गुरु-नेह-निवाहन में, भँभरी कियो पारथ अनन मारी ?

सूत—यह कैसे हो सकता है ?

अश्वत्थामा —

तीखो सुदर्शन कै धौं प्रहारि, दियो निज लोक पटै बनवारी ?

सूत—सो भी नहीं ।

अश्वत्थामा —

छाँड़ि इन्हैं जग में कोऊ और, सकै नहिं रखक तासु बिगारी ॥१॥

सूत—कुमार !

कोऊ नहीं इनमाहिं कुमार ! कियो कछु हूँ अपकार तुम्हारो ।

धारे पिनाक महेश्वर की, समता रन में करै कौन विचारो ।

दारुन शोक भरे हिय में, जब ही तिन हाथ तें आयुध डारो ।

ता समै कोपिकै द्रौपदी-बन्धु, गुरु सिर पै करवाल प्रहारो ॥१०॥

अश्वत्थामा - फिर ऐसे शोक और अस्त्र परित्याग का कारण क्या था ?

सूत - निश्चय, कुमार आप ही हैं ।

अश्वत्थामा—सो कैसे ?

सूत—(आँसू बहाता हुआ) सुनिए—

धर्म महीप कही निहचै, वह अश्वत्थामा गयो रन मारयो ।

है नर कै वह कुञ्जर आप धौं, धीरे इते मुख बैन उचारयो ।

सो सुनि पूत के प्रेमी पिता, विसवास खरो बतियानि में धारयो ।

ताहि समै असुआनि के साथ, गुरू रन में निज आयुध डारयो ॥११॥

अश्वत्थामा—हाय सुतवत्सल पिता, मेरे लिए प्राण परित्याग करने वाले, हाय शौर्यसिन्धु, हाय शिष्यप्रिय, हाय युधिष्ठिर के पक्षपाती !

(विलाप करता है)

सूत—कुमार ! इस प्रकार दीनता-पूर्वक रोने से क्या लाभ है ।

अश्वत्थामा—

हे सुत-वल्लभ ! तुमहि हाय हम इमि प्रिय लागे ।

सुन मम निधन सँदेश सरन-सँग प्रानहु त्यागे ॥

पै हैं जीवित अजौं यदपि तुम या जग नाहीं ।

पक्षपात इमि तात क्रूर में अवसि वृथाहीं ॥ १२ ॥

सूत—कुमार ! धैर्य धरो, धैर्य धरो ।

(कृपाचार्य का प्रवेश)

वेणी-संहार

कृपाचार्य—(सोद्वेग निःश्वास लेकर)

है धिक राज युधिष्ठिर को, पुनि है धिक सानुज वा कुरुराजहिं ।
मौहूँ को, राजन को धिक है, धरे आयुध जे रन में गल गाजहिं ।
देख्यो दुशासन को नृप की तनया के गहे कच आई न लाजहिं ।
खैंचियो केसनि को गुरु के, जिन चित्र लिखे से खड़े लख्यो आजहिं ॥१३॥

तो मैं कैसे वत्स अश्वत्थामा को देखूँ अथवा नगराज के समान
अचल एवं लोक-स्थिति को जाननेवाले, उसके वीर हृदय में शोकावेग
कहाँ से आया । परन्तु अपने पिता का अनुचित पराभव सुनकर न जाने
वह क्या कर डालेगा ।

अथवा

नितहि होत रन गहन सो, पांचाली के वार ।

गुरु-कच खेंचन सो अवसि, अखिल प्रजा संहार ॥१४॥

(देखकर) यह तो वत्स अश्वत्थामा ही बैठा हुआ है, तो इसके
पास चलूँ । (जल्दी से पास जाकर) वत्स ! धैर्य धरो ! धैर्य धरो ।

अश्वत्थामा — (सचेत होकर और आँखों में आँसू भर कर)

हाय पिता, हाय समग्र संसार के एक मात्र गुरु !

(आकाश की ओर देखकर)

जब से लीन्हो जन्म भूठ मुख से नहिं भाख्यौ ।

नहिं कोउ शत्रु अजातशत्रु को नामहि राख्यौ ॥

पै द्विजवर गुरु माहि धरी तुमने निठुराई ।

दोष हमारे मन्दभाग ही को सब भाई ॥१५॥

सूत—कुमार ! तुम्हारे मामा शारद्वत तुम्हारे पास ही खड़े हैं ।

अश्वत्थामा—(पास देखकर और रोते हुए) मामा—

जा सेनापति सङ्ग तुम कियो समर मैं गौन ।

वीरन कीरन-लालसा मेटनहारो जौन ॥

मेटनहारो जौन रह्यो अरि को मद-हारी ।

रन में अपर-सुरेस-सरिस बल-विक्रम-धारी ॥

करत रहे परिहास सदा तुम सों रस साने ।

तुव भगिनीपति गयौ कहाँ मातुल तुम जाने ॥ १६ ॥

कृपाचार्य—वत्स, जानने योग्य सारी बातें तुमको मालूम हैं, इसी लिए अधिक क्षोभ करना व्यर्थ है ।

अश्वत्थामा—मैंने शोक छोड़ दिया, इसलिए अब मैं पुत्रस्नेही पिता का अनुसरण करता हूँ अर्थात् (प्राण परित्याग करता हूँ)

कृपाचार्य—वत्स, तुम सरीखे पण्डितों के लिए यह सर्वथा अनुचित है ।

सूत—कुमार ! ऐसा साहस न करो ।

अश्वत्थामा—आर्य ! आप क्या कहते हैं ।

मम वियोग भय मानिके, पिता गये सुरलोक ।

वा सुत-वत्सल जनक को, सहौं कौन विधि शोक ॥ १७ ॥

कृपाचार्य—वत्स, जब तक यह संसार है तब तक पुत्रों को इस लोक और परलोक में पिता का अनुसरण करना चाहिए, यह सुप्रसिद्ध लोक-यात्रा है ।

वेणी-संहार

दौ जल अञ्जलि श्राद्ध में, केतिक विप्र जिमाय ।

जियत आपु सब करि सकत, फिर को करिहै आय ॥ १८ ॥

सूत—तुम्हारे मातुल के वचन सर्वथा यथार्थ हैं ।

अश्वत्थामा—आर्य यह तो सत्य है, परन्तु दारुण शोक के दुर्वह भार के कारण पिता से वियुक्त होकर मैं पल भर भी जीवित रहने के लिए तैयार नहीं । तो मैं उसी देश को जाने के लिए तैयार हूँ जहाँ मैं अपने दिवंगत पिता के दर्शन तो कर सकूँ । (उठकर कृपाचार्य को देखकर) क्या आज भी शस्त्र ग्रहण की विडम्बना की जायगी—

(अञ्जलि बाँधकर और आँखों में आँसू भरकर)

हे शस्त्रदेव—

हूँ न जाय जग माहिं कहूँ अयमान हमारो ।

द्विजकुल में लै जन्म तऊ तुमको जिन धारो ॥

तव प्रताप सों जनक आप अतुलित बलधारी ।

दसहूँ दिशि जिन ललित कलित कीरति विस्तारी ॥

तिन तज्यो तुमहि सुत शोक सो नहिं भय सों औरैं हितहिं ।

अहौं आज त्यागत तुम्हैं होय भलो तुम्हरो नितहि ॥ १९ ॥

(घूमने की इच्छा करता है)

(नेपथ्य में)

अरे राजवर्ग ! कैसे आप लोग गुरुवर्य भारद्वाजात्मज का पराभव होते हुए देखकर उपेक्षा कर रहे हो ?

अश्वत्थामा—(सुनकर और धीरे-धीरे अस्त्रों को छूता हुआ)
क्या गुरुवर भारद्वाजात्मज का पराभव !

(फिर नेपथ्य में)

त्रिभुवनगुरु आचार्य जबहिं आयुध धरि दीन्यौ ।
नयन-सलिल सों बहुरि वदन प्रच्छालन कीन्यौ ॥
दैं बूढ़े सिर हाथ ताहि सुरधाम पठाई ।
जात कुशल सेां सिविर लखौ द्रुपदो को भाई ॥ २० ॥

अश्वत्थामा—(सकोप और सकम्प—कृपाचार्य और सूत को ओर देखकर) अरे यह क्या है ?

संगर मैं इन भूपन सामुहें, जे रहे हाथ सरासन धारे ।
प्रान पयान की शान्ति गहे, गुरु बैठि रहे चुप आसन मारे ॥
ध्यान को लागि विलोचन मूँ दि कै, त्यागि दिये जब आयुध सारे ।
ता समै वा पितु के सित सीस पै, तू निरदै करवाल प्रहारे ॥ २१ ॥

कृपाचार्य - वत्स ! लोग ऐसा ही कहते हैं ।

अश्वत्थामा—क्या उस दुरात्मा ने पिताजी का शरीर छुआ ?

सूत—(सभय) कुमार उस तेजोराशि महात्मा का पराभव एक नये ढङ्ग से हुआ है ।

अश्वत्थामा—हाय सुतवत्सल पिता ! आपने इस हतभागी पुत्र के लिए अपने आयुध छोड़कर उस नीच के द्वारा अपना इस प्रकार दारुण अपमान कराया । (सोचकर)

अथवा

त्यागि दई रनभूमि में देह, बसाय कै हीय में सोक घनेरो ।
ताको छुवै सिर वायस स्वान, चहै यह द्रोपद काल को पेरो ।
स्वेत सिरोरुह संयुत सीस, छुयौ कर सों नहिं वा पितु केरो ।
आयुध धारे गुमान भख्यो, दुकरायौ मनो पद सों सिर मेरो ॥२२॥
अरे दुष्ट पांचालाधम !

मूँदे विलोचन बैठे मही, मम तात को आयुधहीन निहारो ।
रे मतिमन्द निसङ्क हैं मूढ़, तू आपने पानिहि ता सिर धारो ।
पाण्डु-पञ्चाल-चमू-चय-तूल को, पौन लौं आपु विधूननहारो ।
कान लौं ताने सरासन द्रांणि पै, क्यो न गयो सठ ध्यान तिहारो ॥२३॥

युधिष्ठिर युधिष्ठिर—अज्ञातशत्रु सत्यवर्ती धर्मनन्दन ! बन्धुआं सहित तुम लोगों का इन्होंने क्या बिगाड़ा था, अथवा इनसे क्या कहें अरे धनञ्जय, सात्यकि, बाहुबलशाली वृकोदर, माधव आदि को ! क्या तुम लोगों के यह उचित था कि मुरासुर एवं मनुष्यों के गुरु त्रेलोक्यैक-धनुर्धर, वृद्ध ब्राह्मण, एवं सबके आचार्य तथा मेरे पिता का इस पांचाल-कुल-कलङ्क नर-पशु के द्वारा सिर छुआ जाना देखकर भी चुप रहते ? अथवा ये सब धार पातकी हैं । इनसे क्या—

जिन देख्यो यह पाप तथा जिन अनुमति कीन्हो ।
लाहि जिन सो उतसाह अधम सठ गुरु-बध कीन्हो ॥

ते हैं नरपशु निलज सकल खल आयुधधारी ।
 जिन लाँधी यह लोक-विदित मर्यादा सारी ॥
 उन भीम किरीटी कुष्ण के आजु अवमि प्रानन हरीं ।
 तिन सोनित मञ्जा मेद कां दसौ दिसनि लै बलि धरौं ॥२४॥

कृपाचार्य—वत्स ! द्रोण ही के सदृश बाहुबलशाली एवं दिव्यास्त्र-
 विद्या-विचक्षण ! आपके लिए कोई बात असम्भव नहीं है ।

अश्वत्थामा—अरे पाण्डव, मत्स्य, सोमक, मागधादिक, क्षत्रियाधमो !

पिता सीस परसे समर धरि ज्वलदनल कुठार ।
 कीन काम भृगुराम जो विदित सकल संसार ॥
 विदित सकल संसार कहाँ तुम ताहि न जानत ।
 जिनको आयो काल मूढ़ ते अस दृढ ठानत ॥
 अश्वत्थामा केपि भूप सो नित-सरि माहीं ।
 दै निज जनकहि सकत कहाँ, जल-अञ्जलि नाहीं ॥२५॥

हे सूत ! तुम जाकर अभी सर्वोपकरण-युक्त सर्वायुध-सम्पन्न मेरा
 महाद्वय लक्षण नाम का रथ ले आओ ।

सूत—कुमार की जैसी आज्ञा । (जाता है)

कृपाचार्य—वत्स, हम सब लोगों के हृदयों में भी यह दारुण प्रति-
 कार की अग्नि प्रज्वलित हो रही है । इसके आगके सिवा और कौन
 शात करने में समर्थ है ? तौ भी....

अश्वत्थामा—तो फिर क्या ?

वेणी-संहार

कृपाचार्य—आपको सेनापति बनाकर समर-भूमि में भेजना चाहता हूँ !

अश्वत्थामा—यह तो आपके बल की बात नहीं और न इसकी कोई आवश्यकता ही प्रतीत होती है ।

कृपाचार्य—वत्स ! न तो यह बात अपने बस से बाहर ही है और न अनावश्यक ही है ।

तिनहूँ सो बल-नाथ जौ तुम न बनाये जात ।

भीष्म-द्रोण-विहीन कुरु सेन लरै किमि तात ॥ २६ ॥

यदि आप बद्धपरिकर होकर युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जायँ तो त्रैलोक्य में कोई शक्ति आपके समक्ष नहीं खड़ी हो सकती । पाण्डव सेना की तो कुछ बात ही नहीं । अतः मेरा अनुमान है कि कौरव-नाथ अभिषेक के सारे उपकरणों को एकत्रित किये हुए आपको प्रतीक्षा करते होंगे ।

अश्वत्थामा—यदि ऐसा ही है तो भी परिभवानल-दग्ध हृदय, प्रतिकार-जलावगाहन के लिए समुत्कंठित हो रहा है । इसलिए मैं कौरवेश्वर के पास जाकर स्वयं सेनापति बनने का प्रस्ताव करूँगा, और इस प्रकार पिता के वध से दुखी कुरुराज के संताप को धैर्य दिलाकर दूर करूँगा ।

कृपाचार्य—वत्स ! यह ठीक है, चलो उसी ओर चलें ।

(दोनों का चलना)

(कर्ण और दुर्योधन का प्रवेश)

दुर्योधन—अंगराज !

तेजहि धारनहार बन्धु-वध-दुस्व-जल-धारा ।

करि निज-आयुध-पोत तरत दोउ-भुज-बल द्वारा ॥

तनय-निधन-सन्देश सुनत रनखेतहि माहीं ।

असमय त्यागो अन्त्र उचित कीन्हों गुरु नाहीं ॥ २७ ॥

अथवा विद्वानों ने ठीक कहा है कि नैसर्गिक प्रवृत्ति का परित्याग नितान्त दुरूह है । यदि ऐसा न होता तो शोकाभिभूत होकर वह क्षत्रिय-जन-मुलभ कर्कशता को छोड़कर ब्राह्मणोचित दीनता कैसे ग्रहण करते ?

कर्ण—महाराज कौरवेश्वर ! ऐसा नहीं है ।

दुर्योधन—फिर कैसा ?

कर्ण - उनका अभिप्राय यह था कि अश्वत्थामा को मैं चक्रवर्ती सम्राट् बनाऊँ, परन्तु जब ऐसा न हो सका तब उन्होंने यह सोचा, अब तो इस वृद्ध ब्राह्मण का अस्त्र-परिग्रह व्यर्थ है, इसलिए उन्होंने ऐसा किया ।

दुर्योधन—(सिर हिलाकर) ठीक ऐसा ही है ।

कर्ण—इसी लिए उसने कौरव-पाण्डव-पक्षपात में महाप्रवृत्त इस संग्राम में परस्पर मृत्यु को प्राप्त होते हुए राजाओं की उपेक्षा की और यहाँ तक कि जयद्रथ-निधन को भी सहन किया ।

दुर्योधन यह ठीक है ।

वेणी-संहार

कर्ण—महाराज ! एक बात और है । द्रुपद ने भी बाल्यकाल से ही इसका अभिप्राय समझकर इसे अपने राज्य में नहीं रहने दिया ।

दुर्योधन—अङ्गराज ! सत्य है, आपका कथन सर्वथा यथार्थ है ।

कर्ण—यह केवल मेरा ही अनुमान नहीं है किन्तु अन्य बुद्धिमान भी ऐसा ही मानते हैं ।

दुर्योधन—यह ऐसा ही है, इसमें कोई सन्देह नहीं ।

सिन्धु महीपति पार्थ सन अभय दान गुरु दीन ।

जो यह बात न तामु की रक्षा क्यों नहीं कीन ॥ २८ ॥

कृपाचार्य—(देखकर) वत्स ! यह कौरवेश्वर सूतपुत्र के साथ यहीं न्यग्रोध-छाया में बैठे हुए हैं । तो आओ इन्हीं के पास चलें ।

(जाते हैं)

दोनों—जय हो, कौरवेश्वर की जय हो ।

दुर्योधन—(देखकर) अरे क्या आचार्य-पुत्र और कृपाचार्य जी आ गये । (आसन से उठकर कृपाचार्य से) गुरुवर ! आपको प्रणाम करता हूँ । (अश्वत्थामा की ओर देखकर) आचार्य-पुत्र !

आवहु द्रोनी पियारे इतै, हमरे हित लागि गये गुरु मारे ।

दीजे अलिंगन गाढ़ौ हमैं, अंग-अङ्गनि मैं रस पूरि हमारे ॥

या भुज के परसे सो मिले सुख, जैसा रहे पितु देत तुम्हारे ।

आनँद कै उमगे उर माहिं, प्रफुल्लित होहिं तनोरुह सारे ॥ २९ ॥

(द्रौणि को भेंटकर अपने निकट बिठलाता है)

(अश्वत्थामा का अश्रुपात करना)

कर्ण—द्रौणि ! दुःख-ज्वाला में इस प्रकार अपने को डालने में क्या रक्खा है ?

दुर्योधन—गुरुनन्दन ! इस दुःख-सागर में निमग्न होनेवाले मेरी और तुम्हारी एक सी ही दशा है ।

वह तात सनेही तुम्हारे रहें, हमरेहू पिता के सखा रहें सोई ।

तुम आयुध सीखे यथा तिनसों, हमहूँ सवै अस्त्र लहे तिनसों ही ॥

तिनके वध से जो भयो हिय दाह, न जानत सो गुरुनन्दन कोई ।

तुमही अपने गुरु सोच सो जानि, सको हमरे हिय जो दुख होई ॥३०॥

कृपाचार्य—दुर्योधन का कथन सर्वथा यथार्थ है ।

अश्वत्थामा—राजन् ! आपके इस प्रकार पक्षपात करने पर (सम-वेदना दिखलाकर) मैं अपना शोक-भार कम कर सकता हूँ ।
परन्तु—

मो जीवत पितु के सँगहि या विधि भई अनीति ।

तो जग में निज सुतन की को करिहै परतीति ॥३१॥

कर्ण—इसमें कोई क्या करे, जब सब की रक्षा करनेवाले गुरु ने ही अस्त्र परित्याग करके इस प्रकार अपनी दुर्गति कराई !

अश्वत्थामा—अंगराज, आप क्या कहते हैं क्या किया जाय ।
सुनिए, जो कुछ करूँगा—

वेणी-संहार

निज भुजबल को अमित अभिमान धारि,
जिन पांडु-वीरन ने आयुध उठायौ है ।
द्रुपद-महीप-कुल-सम्भव-गरभ-गत,
बाल वा कुमार होय वयस अधिकायौ है ।
ग्वैचत विलोक्यो गुरु-केस जिन नैननि सों,
अथवा हमारे जो विरुद्ध समुहायौ हैं ।
ताही के निधन काज द्रोन को कुमार आजु,
कोपि यम हू को यमराज बनि आयौ है ॥ ३२ ॥

और भी अरे ! परशुराम के शिष्य कर्ण !
साई यह भूमि अरि-सोनित-सलिल सन,
जह भृगुराम बहु कुण्ड पूरि राख्यो है ।
खैचि मम जनक-सिरोरुह को फेरि अब,
क्षत्रिन करन अपमान अभिलाख्यौ है ।
जैसे दिव्य आयुधनि धार्यो है परसुधर,
अस्त्रनि सों तैसियै निपङ्ग भरि राख्यौ है ।
आजु यमदग्न्य-सुत-पन्थ पै चलन काज,
द्रोन को कुमार हठ ठानि मन माख्यौ है ॥ ३३ ॥

दुर्योधन - आचार्यपुत्र ! इसके अतिरिक्त तुम्हारी उस अद्वितीय
वीरता के योग्य और है ही क्या ?

कृपाचार्य—राजन् ! द्रोणपुत्र ने अपने ऊपर समर-भार को वहन करने का बड़ा भारी उत्तरदायित्व लिया है । इसपर भी यदि आप अपनी कृपा दिखलायें तो मेरा अनुमान है कि यह त्रैलोक्य को नष्ट कर सकता है, पाण्डवी सेना की तो कोई बात नहीं । अतः आप इसे सेनापति बना दें ।

दुर्योधन—आपका कहना यथार्थ है । परन्तु मैंने पहले ही उस पद पर अङ्गराज को नियुक्त कर दिया है ।

कृपाचार्य—इन्हें भी शत्रु-वंश का संहार करना है, क्या इससे इन्हें दुःख न होगा । परन्तु कर्ण की अपेक्षा और अपमान-सागर में निमग्न होनेवाले इस अश्वत्थामा की उपेक्षा करना उचित नहीं ।

अश्वत्थामा - राजन् कौरवेश्वर ! क्या अब भी युक्तायुक्त-विचार करना है ?

सुखों से सोवै गेनि सुने विरुदावलि जागौ ।

केसव-पाण्डव-रहित करौं महि सोचहि त्यागौ ॥

वीरन की रन-कथा न कहूँ सुनि परै रतीकौ ।

यह नृप-कानन-भार मिटै भारी धरती कौ ॥ ३४ ॥

कर्ण—(हँसकर) कहने को तो यह छोटी सी बात है, परन्तु इसको चरितार्थ करके दिखलाना कठिन है । कौरव-सेना में बहुत से ऐसे वीर हैं जो इस कार्य को सम्पादन कर सकते हैं ।

वेणी-संहार

अश्वत्थामा—अङ्गराज ! अवश्य कौरव-सेना में बहुत से ऐसे वीर हैं, जो इस कार्य का सम्पादन कर सकते हैं, परन्तु शोकावेग के कारण अत्यन्त दुखी होने से ही मैं ऐसा कह रहा हूँ, किसी वीर पर मैं आक्षेप नहीं करता ।

कर्ण—दुःखार्त के लिए तो अश्रुपात करना उचित है, परन्तु आयुध शस्त्रधारी क्रोधी वीर के लिए, संग्राम-भूमि में उतरना ही समीचीन है, इस प्रकार प्रलाप करना उचित नहीं ।

अश्वत्थामा—(सरोप) अरे राधेय ! तू दुःस्वित अश्व-त्थामा को भी अश्रुपात से प्रतिकार करने का उपदेश दे रहा है, आयुधों से नहीं । देख—

हैं गुरु के गुरु-श्राप सौं कुठित, नाहिन कैसे हूँ अस्त्र हमारे ।

भाग्यों नहीं कवहूँ रन लुँड़िकै, जैसे इते तुम हो पग धारे ।

वंस-प्रसंसन को अवतंस, नहीं हम हैं कोउ सूत के वारे ।

लेहुँगा आयुध सों बदलो, अमुआनि के नाहीं बहाय पनारे ॥३५॥

कर्ण—(सक्रोध) अरे वाचाल ! व्यर्थ ही अस्त्रपरिग्रहाभिमानि !

अर्द्धवटु !

हैं निर्वल अथवा सबल आयुध दीन न त्यागि ।

महाबली त्व जनक जिमि धृष्टदुमन भय लागि ॥ ३६ ॥

और भी—

सूत हैंहु वा सूत-सुत, अथवा सब विधि हीन ।

वंस जन्म है भाग्यवस, पौरुष निज आधीन ॥३७॥

अश्वत्थामा—(सक्रोध) अरे सूतकुलाङ्गार ! राधागर्भभारभूत !
शस्त्र-विद्या के न जाननेवाले ! जनक-निन्दक । अथवा—

हाय सूर कायर चहै यह कोउ औरहि बात ।
पै पितु की भुज-बल-कथा हैं त्रिभुवन विख्यात ॥
है त्रिभुवन विख्यात पिता की अति प्रभुताई ।
दिन प्रति दिन जिन समर-भूमि में ताहि दिग्याई ॥
केहि विधि त्यागौ अस्त्र युधिष्ठिर नृप सब जानत ।
तुम सम कायर भूलि नाहिं तहिं साँच प्रमानत ॥ ३८ ॥

कर्ण—(हँसकर) ऐसा ही है । मैं भीरु हूँ, परन्तु तुम अपने
परम पराक्रमी पिता का स्मरण करके न जाने क्या कर डालोगे, मुझे
इसका बड़ा संशय है । और भी मुन रे मूढ़—

जा कहूँ हिय हठ ठानि शत्रु निज अस्त्र प्रहारै ।
तौ का आयुधरहित वीर तिनको न निवारै ॥
गुरु-कच खैंचनि समै राज-मंडली अगारी ।
उदासीन इमि रहे मनौ नारी हिय हारी ॥ ३९ ॥

अश्वत्थामा—(सक्रोध और काँपकर) अरे राजप्रिय दुरात्मा
धृष्ट सूताधम असम्बद्धप्रलापिन् !

सुतघात को दीर्घ दुःख हिलाय कै, द्रौपद को अथवा भय मानी ।
नहीं कीन्हौ निवारन ताकौ पिता, जग की यह कोरी असारता जानी ।

वेणी-संहार

जस और को तोपै न जात सह्यो, निज वीरता की कहै मूढ़ कहानी ।
तुव शीश पै धारत हैं पद वाम, हमैं उठि रोक अरे अभिमानी ॥४०॥

(वैसा करने के लिए सन्नद्ध होता है)

कृपाचार्य और दुर्योधन—आचार्यपुत्र ! शान्त हो, शान्त हो ।

(दोनों रोकते हैं)

कर्ण—(सक्रोध उठकर और खड्ग खींचकर) अरे दुरात्मा !
अपनी प्रशंसा करनेवाले ब्राह्मणास्पद !

मुनिकै तुव कटु वचन तुहिं, द्विज गुनि मारत नाहिं ।

खड्ग छिन्न पद त्यागि तन, न तु परतो माहि माहिं ॥४१॥

अश्वत्थामा—अरे मूढ़ ! मैं ब्राह्मण होने के कारण अवध्य हूँ तो
ले इस ब्राह्मणता को छोड़ता हूँ ।

(यज्ञोपवीत काटकर फिर क्रोध से)

सावधान खल आजु भाग तंपै है रूठी ।

करत प्रतिज्ञा देखु अबै पारथ की भूठी ॥

कै निज आयुध धारु अरे भृगुपति के चेरे ।

अथवा अञ्जलि बांधि खड़े समुहे हौ मेरे ॥४२॥

(दोनों खड्ग खींचकर परस्पर आघात करने के लिए उद्यत होते हैं)

(कृपाचार्य और दुर्योधन दोनों को रोकते हैं)

दुर्योधन - भाई, अस्त्र न उठाओ ।

कृपाचार्य - वत्स ! सूतपुत्र ! अस्त्र न उठाओ !

अश्वत्थामा—मामाजी, आप मुझे क्यों रोकते हैं ? यह सूत-कुल-कलंक मेरे पिता की निन्दा करनेवाला है, धृष्टद्युम्न का पक्षपाती है ।

कर्ण -- राजन् ! राजन् ! हमको न रोकिए ।

करत अवज्ञा मूढ़ की डरपाये विन धीर ।

तो वह क्रोधित है बहुरि वनति विपुल बलवीर ॥ ४३ ॥

अश्वत्थामा—राजन् ! इसे छोड़ दीजिए, छोड़ दीजिए, जिससे यह मेरे भुज-पिंजर में पिसकर अपने प्राण-परित्याग का सुख उठावे । और हे राजन् ! यदि आप स्नेह से या और किसी हेतु से इस जनक-निन्दक दुरात्मा को मुझसे बचाने की चेष्टा करते हैं तो वह दोनों ही प्रायः व्यर्थ हैं । देखिए—

हौं तुम तो गुनखानि महीपति, औ विधुवंश में जन्म तुम्हारौ ।

है सखा कैसे सकै तुम्हरो, यह पापी नराधम सूत को वारौ ॥

सोच के छोड़िये कौरवनाथ, हिये निज द्रौनि ने या प्रन धारौ ।

आजु धनञ्जय औ रविनन्दन, हीन करौं महि-मण्डल सारौ ॥ ४४ ॥

(प्रहार करने की इच्छा करता है)

कर्ण—(कृपाण उठाकर) अरे ! ब्राह्मणाधम ! वाचाल ! तुझे अभी मार डालूंगा । राजन् ! छोड़ दीजिए । मुझे आप रोकिये नहीं ।

(मारने की इच्छा करता है)

वेणी-संहार

(दुर्योधन और कृपाचार्य रोकते हैं)

दुर्योधन—कर्ण ! आचार्यपुत्र ! यह आज तुम्हारा कैसा मति-
विभ्रम हो गया है ?

कृपाचार्य—वत्स ! और का और ही हो गया । तुम्हारा यह कैसा
व्यामोह है ? इस समय अपने बल-प्रदर्शन से राजवंश की तुम्हीं
से क्षति हांगी ।

अश्वत्थामा—क्या मुझे इस कटु-प्रलारी सूत-कुलाङ्गार का अहंकार
चूर्ण करने का अवकाश न मिलेगा ?

कृपाचार्य—वत्स ! अपने सेनापति के विरोध करने का यह
समय नहीं है ।

अश्वत्थामा—मामाजी, यदि ऐसा ही है तो—

जो लौं न पाण्डव सरनि तोखन मारि यदि संहारिहै ।

तव लौं अरे प्रिय अस्त्र तुमको हम न रन में धारिहैं ॥

वीर पारथ भीम सौं जव विकल सैनहिं लेखियौ ।

तव चमूरति निज प्रिय सखा को अमित बल अवरेखियौ ॥ ४५ ॥

(कृपाण का परित्याग करता है)

कर्ण—(हँसकर) आपके पूजनीय पूर्वज भो तो अस्त्र परित्याग
करते रहे हैं ।

अश्वत्थामा—अरे आप लोगों का शस्त्र परिग्रह निष्फल होने के
भी कारण एक प्रकार व्यर्थ ही है ।

कर्ण—अरे मूर्ख !

हैं जब लौं आयुध धरे औरनि कौ का काम ।

मोसर जो नहिं करि सकै ताको कछू न नाम ॥ ४६ ॥

(नेपथ्य में)

अरे दुरात्मा ! द्रौपदी के केशाम्बराकर्षण का महापाप करने-
वाले ! नीच ! धार्तराष्ट्र ! चिरकाल के अनन्तर मेरे सम्मुख आया
है । अरे नीच पशु, तू कहाँ भाग जायगा ? और तुम लोग भी अरे
दुर्योधन, कर्ण, शकुनि प्रमुख धनुर्धारी, अभिमानी, पाण्डवों के
शत्रु सुनो !

बन्धु के आयसु जाने गह्यौ कच, खैचिकै द्रौपद-राजकुमारी ।

देखत ही गुरु लोगनि के, तजि कानि कौ जाने हरी हठि सारी ॥

कीन्हें हतो प्रन लेनित-आसव-पान के जासु के हीय विदारी ।

कौरव ! ताहि बचावत क्यों न, परयो भुज-पञ्जर आय हमारी ॥४७॥

(सब लोग मुनते हैं)

अश्वत्थामा—(हँसी उड़ाने का अभिनय करता हुआ) अरे
कर्ण ! सेनापति ! परशुराम के शिष्य ! मेरे पिता का उपहास करने-
वाले ! अपने बाहुबल से सारे संसार की रक्षा करनेवाले !
(“हैं जब लौं आयुध धरे” इत्यादि पढ़ता हुआ) तुम्हारी परीक्षा
का समय निकट आ गया, अब इस दुःशासन को क्यों नहीं
बचाते ?

वेणी-संहार

कर्ण—अरे वृकोदर की क्या शक्ति है कि मेरे जीते जी कुमार की छाया भी छू सके । युवराज ! भयभीत न होना, मैं आ गया ।

(निकलकर जाता है)

अश्वत्थामा— राजन् ! कौरवेश्वर ! भीष्म, द्रोण से रहित इस कौरव-सेना को अर्जुन-भीम नष्ट किये डालते हैं । यह सूतपुत्र इसकी रक्षा नहीं कर सकता, इसलिए आप स्वयं जाकर इसकी रक्षा करें ।

दुर्योधन—अरे दुरात्मा वृकोदर अथवा और किसी की क्या शक्ति है कि जब तक मैं अपने हाथ में अस्त्र धारण करते हुए जीवित रहूँ, तब तक वत्स दुःशासन की कोई छाया भी छू सके । भयभीत न होना, मैं आ गया । कोई यहाँ है, मेरा रथ लाओ ।

(निकलता है)

(फिर नेपथ्य में केलाहल)

अश्वत्थामा—(आगे देखकर) मामाजी ! हाय बड़ा कष्ट हुआ । भ्राता के प्रतिज्ञा-भंग के भय से अर्जुन और भीम दोनों ही दुर्योधन और कर्ण को दुर्निवार वाणों की वर्षा से कातर किये देते हैं । हाय बड़ा कष्ट हुआ, भीम ने दुःशासन का रक्त पी ही लिया, मैं दुर्योधन के कनिष्ठ भ्राता को ऐसी विपत्ति में नहीं देख सकता । मुझे अनृत भाषण भी स्वीकार है । मामा ! शस्त्र, शस्त्र ।

निपट असतहु सत्य सोहै कबहुँ सतगुन भेय ।

स्वर्ग हूँ ते नर्क है कबहुँ अधिक मुख देय ॥

भीम से दुस्सासनहि अब अवसि रच्छनकाज ।

तजे आयुध ग्रहन हित मम बाहु उमहत आज ॥ ४८ ॥

(खड्ग को ग्रहण करना चाहता है)

(नेपथ्य में)

महात्मा द्रोणपुत्र आप अपने सत्य वचनों का उल्लंघन न कीजिए ।

कृपाचार्य—वत्स ! यह दिव्यबाणी तुम्हें असत्य से रोक रही है ।

अश्वत्थामा—यह दिव्यबाणी मुझे कैसे संग्राम में पदार्पण करने से रोकती है ? अरे देवगण भी पाण्डवों के पक्षपाती हैं, भीम ने दुःशासन का रुधिर पान कर ही लिया । बड़ा कष्ट हुआ ।

निपट क्रूर वह भीम, भीम-बल-विक्रम-वारौ ।

पियत दुशासन-रुधिर आजु हौं ताहि निहारौं ॥

उदासीन पै रह्यो भयो नहिं तासु सहाई ।

कुरुपति कौ हित और करौं रन में का जाई ॥ ४९ ॥

मामाजी ! कर्ण पर क्रोध करके मैंने अच्छा नहीं किया, इसलिए तुम्हीं तब तक जाकर महाराज की सहायता करो ।

कृपाचार्य—मैं दुःशासन की रक्षा के लिए जा रहा हूँ, तुम भी तब तक शिविर में चले जाओ ।

(घूमकर फिर दोनों निकलकर जाते हैं)

तृतीय अङ्क समाप्त ।

—

चतुर्थ अंक

(प्रहार से मूर्च्छित दुर्योधन को रथ पर डालते हुए सूत का प्रवेश)

(सूत घबराया हुआ घूमता है)

(नेपथ्य में)

अरे ! बाहुबल के दर्प से महासमर में भाग लेनेवाले एवं कौरवों के पक्षपात से प्राणधन की बाज़ी लगानेवाले राजाओं ! तुम लोग अपनी सेनाओं को रोको, जो मरे हुए दुःशासन के शरीर से पीतावशेष रुधिर से क्लिप्तगात्र विकटवेपी वृकोदर को देखकर भागी जा रही हैं ।

सूत—(देखकर) क्या यह कृपाचार्य महाराज अर्जुन से संग्राम करते हुए कर्ण की रक्षा के लिए आगे बढ़ रहे हैं । देखो इनकी रथ-ध्वजा में सुवर्ण-कमंडलु बँधा हुआ है, श्वेत चमरें हिल रही हैं । असंख्य घोड़ों के, मनुष्यों के शवों पर होकर चलने के कारण इनका रथ उल्ललता हुआ आ रहा है, जिससे घण्टियाँ बज रही हैं । इन्होंने अपने प्रवल बाणों की वर्षा से प्रतिपक्षी की सेना को स्तम्भित कर दिया है, और अब वह हमारी भांगती हुई सेना को धैर्य बँधा रहे हैं । इसमें हमारे वीरों को कुछ थोड़ा-सा अवलम्ब मिल गया है ।

(नेपथ्य में महान् कोलाहल)

अरे कौरव सैनिको ! मेरे दन मात्र से भयभीत होने के कारण तुम्हारे हाथों से धनुष, तोमर, शक्ति और कृपाण प्रभृति आयुध क्यों गिर पड़ते हैं ? अरे पाण्डवों के पक्ष-समर्थक योद्धाओ ! तुम लोग क्यों भयभीत हो रहे हो ? मैं भीमसेन हूँ, मारे हुए दुःशासन के पोवर वनःस्थल से रुधिरासव का पान करके प्रमत्त हो गया हूँ, और शीघ्रता-पूर्वक इसी ओर आ रहा हूँ। मेरे प्रतिज्ञा-महोत्सव के पक्ष होने में थोड़ी सी ही देरी है। मैं तो कौरवेश्वर का अत-निर्जित दास मय्यम पाण्डव भीमसेन हूँ, और आप सब लोगों को साक्षी करके कहता हूँ। सुनो—

मानी धनी कुरुराज महींपति, ठाढ़ा रह्या कर में धनुधारी ।
अङ्ग-नरेश तथा नृप शल्य, रहे सत बांधव जाहि निहारी ॥
आयसु पाय धरी जिन धाय, सभा महुँ भूष-मुता-कच-सारी ।
वा कुरुवंस-कलंक को सोनित, पान कियो नय से उर फारी ॥१॥

सूत—(सुनकर—सभय) अरे यह क्या ? क्या यह दुरात्मा कौरव-राज के पुत्र-वन को विध्वंस करनेवाला प्रभञ्जनात्मज ही यहाँ आ पहुँचा ? महाराज तो संज्ञाहीन पड़े हैं, इसलिए रथ को बहुत दूर लिये जाता हूँ। (चारों ओर घूमकर और जल्दी से देखकर) कहाँ दुःशासन की भाँति इस पर भी यह कोई अनार्य काम न कर डाले। अरे यह मामने हो न्यग्रोध पादप लगा हुआ है, जिनके नूतन नयन पत्र सरोवर-सरोजों के आमोद-बलित और शीतल समीर के लगने से दिल रहे

वेणी-संहार

हैं। समर-व्यापार-खिन्न सैनिकों का सब से सुन्दर स्थान यही है। यहीं पर बैठने से महाराज की मूर्च्छा जाती रहेगी, क्योंकि यहाँ पर तालवृत्त की हवा अपने आप ही लगती है और चन्दनादि स्वभाव-शीतल एवं सुगन्धित वृत्तों से रगड़ते हुए चलने के कारण परिमल-वर्लित पवन बड़ा ही सुगन्धित हो रहा है। लूनकेतु रथ भी इस वृत्त के नीचे आ सकता है। (प्रवेश का अभिनय करते हुए) अरे यह कौन है? कौन है? (चारों ओर देखकर) क्या यहाँ पर कोई भी ऐसा आदमी नहीं? निश्चय ही भयंकराकार भीम को देखकर स्वामी को इस दशा में छोड़कर सैनिक अपने-अपने शिविर में जा चुके हैं। हाय क्या करूँ! बड़ा कष्ट है।

दै अभय-दान जयद्रथ को, गुरु पार्थ सौ ताहि बचाइ न पाये।
कूर वृकोदर ने मृग लौं वा दुशासन के रन प्रान नसाये ॥
पाण्डव-पैज को संगर माहिं, सवै परिपूरण कै दरसाये।
वाम हूँ या विधि सौं दुदौव, न जाने कहा करिबे मन लाये ॥२॥

(राजा को देखकर) अरे बड़ा दुख है, महाराज अब तक मूर्च्छित पड़े हैं—

जिमि मद-कलित करेनु दियो बन सकल उजारी।
रही जहाँ अवशेष सालतरु की एक डारी ॥
तिमि हत-सकल-कुमार भयो यह विधु-कुल आरत।
तऊ कुटिल करि दीठ वाम विधि तुमहिं निहारत ॥ ३ ॥

अरे विधाता ! तू निश्चय ही भरत-कुल से इस प्रकार रुष्ट है ।

तजि संशय धारै गदा, अंग न एकौ घाय ।

भीमसेन प्रन विधि यहौ, पूरण करिहै हाय ॥ ४ ॥

दुर्योधन—(सचेत हांकर सधैर्य) अरे दुरात्मा हतभागी वृकोदर का क्या साहस है कि दुर्योधन के जीते-जी अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर सके । वत्स दुःशासन ! भयभीत न होना, मैं आ गया । अरे सूत ! मेरा रथ उस ओर ले चलो, जहाँ वत्स दुःशासन को देख सकूँ ।

सूत—महाराज, आपके घोड़े अब रथ खींचने में असमर्थ हैं (एक ओर होकर) और आपके मनोरथ को भी.....

दुर्योधन—(रथ से उतरकर) स्यन्दन को ले चलने में देर होगी, इसलिए व्यर्थ ही समय न नष्ट करना चाहिए ।

सूत—(खिन्न और सकरुण होकर) महाराज ! ठहरिए, ठहरिए ।

दुर्योधन—सूत ! तुमको धिक्कार है, रथ से क्या । शत्रु-सेना-सङ्घटन-सञ्चारी अकेला दुर्योधन केवल गदा के हाथ में लेकर अभी संग्राम को जाता है ।

सूत - महाराज ! यह यथार्थ है । इसमें कोई सन्देह नहीं ।

दुर्योधन - यदि ऐसा ही है तो फिर क्यों बकते हो ?

प्यारो हमारो दुशासन बन्धु, स्वभाव ही सौ जो हमें अति भावत ।

आयुध घोर वृकोदर नीच, अबै वहि बाल के प्रान नसावत ॥

वेणी-संहार

जान चहौं तेहि वारन काज, तेउ तुव हाथन जान न पावत ।

सारथी कैसे कहौ तुमको, करुणा दया रोप औ लाज न आवत ॥५॥

सूत—(करुणापूर्वक पैरों पर गिरकर) महाराज सुनिए ! वृकोदर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करके आता ही होगा ।

दुर्योधन—(सहसा पृथ्वी पर गिरकर) हाय वत्स ! हा दुःशासन ! मेरी आज्ञा से पाण्डवों से वैर करनेवाले ! हा लोकोत्तर वीर ! हा सदा मेरे निकट रहनेवाले ! हा शत्रु-सेना-गजघटा पर भृगेन्द्र के समान आक्रमण करनेवाले ! कहा चले गये ? मुझसे बोलते क्यों नहीं ?

(दीर्घ निःश्वास लेकर मूर्च्छित हो जाता है)

सूत—महाराज ! महाराज ! धैर्य धारण कीजिए ।

दुर्योधन—(सचेत होकर और दीर्घ निःश्वास लेकर)

बन्धु दुःशासन जीवन के सुख भोग यथारुचि भोगि न पाये ।

लालन तेरो सकौ कर नाहिं, कहा भयो जो हम जेठ कहाये ।

या विपदा के भये हम हेतु, वृथा ही इतै तुम प्रान गँवाये ।

पाण्डुन सां इमि वैर वैधाय, तुमैं हम हाय बचाय न पाये ॥ ६ ॥

(गिर पड़ता है)

सूत—महाराज ! धैर्य धारण कीजिए ।

दुर्योधन—सूत ! तुमको धिक्कार है, तुमने क्या किया ?

रञ्छनीय आता नितै, आयसु पालनहार ।

मोहिं बचाय तुमने दियो, वाको रन उपहार ॥ ७ ॥

सूत — महाराज ! मर्मभेदी बाण, तोमर, शक्ति आदि आयुधों के प्रहारों से महारथियों ने आपको निश्चेष्ट कर दिया था, उस दशा में मैं आपको यहाँ ले आया ।

दुर्योधन — सूत ! तुमने बड़ा बुरा किया ।

मारथ्यो अनुज जिन समर में जमराज हूँ तेहि लागतो ।

अरु असनि लौं बाकी गदा आघात सों ही जागतो ॥

अब लौं दुशासन रुधिर-रञ्जित समर शय्या में बहीं ।

सोयां नहीं मैं अरु वृकोदर कौ सुवायो हूँ नहीं ॥ ८ ॥

(दीर्घ निःश्वास लेकर और आकाश को देखकर) अंग नीच !
भरत-कुल-शत्रु ! निर्दय विधाता !

होय मीचु अबही भलो पै न वृकोदर हाथ ।

सूत महाराज ! ऐसी अमंगल-वचन-रचना न कीजिए । यह कैसा —
दुर्योधन —

काम कहा धन राज्य सौ या विधि हाँइ अनाथ ॥ ९ ॥

(प्रहारों से पीड़ित सुन्दरक का प्रवेश)

सुन्दरक — सज्जनो ! आप लोगों ने इस ओर सारथी सहित महाराज दुर्योधन को देखा या नहीं ? अरे बड़ी कठिन समस्या है कि कोई उत्तर नहीं देता — ये बद्धपरिकर सैनिक दिखलाई पड़ते हैं, तो चलकर इन्हीं से पूछूँ । ये लोग प्रखर प्रहारों से गतप्राण अपने स्वामी के शरीर से कवच को हटाकर कङ्कपत्र से बाणों को खींच रहे हैं ? तो

वेणी-संहार

यह भी नहीं जानते । चलो आगे चलकर पूछूँ । आगे की ओर कुछ चलकर घूमकर) मनुष्यों का यह दूसरा समूह मालूम हो रहा है, इनसे चलकर पूछूँ । (पास जाकर) क्या तुम लोग जानते हो कि कौर-वेश्वर कहाँ हैं ? (देखकर) अरे यह लोग तो मुझे देखकर तार स्वर से विलाप करने लगे । तो यह भी नहीं जानते । हाय ! कैसा दुष्कर समय है, यह वीर माता है, इसने अपने पुत्र के मरण का समाचार पाकर अरुण-परिधानयुक्त, समग्र भूषण-भूषिता अपनी पुत्रवधू के साथ परलोक-यात्रा के लिए तैयारी की है । वीरमाता ! तुम्हारा कार्य प्रशंसनीय है, जन्मान्तर में तुम अमर पुत्र की माता होओगी । तो चलो आगे बढ़कर देखूँ । योधाओं का यह दूसरा समूह है, यद्यपि इनके शरीरों पर न जाने कितने अस्त्राघात के व्रण हैं, परन्तु इन्होंने उनकी कोई चिन्ता न करके किसी प्रकार का औषधोपचार नहीं किया है । यह लोग इस शून्यासन तुरंग को पाकर रो रहे हैं; निश्चय ही यहीं पर इनका स्वामी मारा गया है । तो यह लोग भी नहीं जानते होंगे । चलो बढ़कर पूछें तो । यह तो सभी लोग अपनी स्थिति के अनुसार भाग्योदय के विमुख होने पर दुःख का अनुभव करके व्याकुल हो रहे हैं । तो अब मैं किससे पूछूँ और किसको उपालम्भ दूँ !! अच्छा, मैं स्वयं ही देखता हूँ । अच्छा, अब मैं भाग्य को कोसूँगा । हाय एकदश अज्ञौहिणी सेना के अधिपति, सौ भाइयों में ज्येष्ठ, भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य, कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा प्रभृति राजाओं के स्वामी, समस्त धरातल के

एकमात्र अधिकारी महाराज दुर्योधन को भी ढूँढ़ना पड़ता है। वह न जाने कहाँ होंगे। अथवा विधाता को क्यों लाञ्छित करूँ, विदुर के वचनों की अवहेलना ही इसका बीज है। पितामह के हितोपदेश का तिरस्कार इसका अकुर है, शकुनि का प्रोत्साहन इसका मूल है, दीर्घ-कालीन वैर ही इसका आलवाल है, कृष्ण का कचाकर्षण ही इसका प्रसून है, लान्छागृहदाह और कण्ट-व्यूत आदिक इस वृत्त के फल हैं। महाराज ऐसे ही विष-वृत्त के फल चख रहे हैं (दूसरी ओर देखकर) यह तो पताका-रहित स्यन्दन दिखलाई पड़ता है। इसके विविध रत्नों की कान्ति के कारण भानु मयूखमालाओं से उत्पन्न सहस्रों शक्र शासनों से दिङ्मण्डल प्रदीप्त हो रहा है, महाराज दुर्योधन अवश्य यहीं होंगे। (समीप जाकर और देखकर जय ! जय ! महाराज की जय हो।

सूत—(देखकर) महाराज ! युद्धभूमि से अभी सुन्दरक आया है।

दुर्योधन—(देखकर) अरे सुन्दरक ! अङ्गराज कुशल से तो हैं ?

सुन्दरक—हाँ महाराज, शरीर मात्र से।

दुर्योधन (घबड़ाकर) हा सुन्दरक ! क्या किरीटी ने उनके अश्वों को अथवा सारथी के मार डाला ? या उनका रथ ही तोड़ डाला ?

सुन्दरक—महाराज ! केवल रथ ही नहीं तोड़ा, प्रत्युत मनोरथ भी।

दुर्योधन—सुन्दरक ! इस प्रकार सन्दिग्ध-वचन-रचना से मुझे क्यों व्याकुल कर रहे हो ? स्पष्ट कहो।

वेणी-संहार

सुन्दरक—महाराज की जैसी आज्ञा हो। महाराज के प्रसाद से मेरी प्रहार-वेदना जाती रही। (घूमकर) महाराज इस समय राज-कुमार दुःशासन का वध (आधा कहकर मुँह ढक लेता है)

सूत — सुन्दरक ! कहो, भाग्य ने यह पहले ही कह दिया।

दुर्योधन कहो। हम लोग सुन चुके हैं।

सुन्दरक—महाराज ! सुनिये, जब स्वामी अङ्गराज ने दुःशासन-वध का समाचार सुना तो क्रोध के मारे उनकी भृकुटियाँ तन गईं, त्वोरियों में बल पड़ गये, विशाल भालस्थल क्रोधादिक के कारण दमकने लगा, और उन्होंने इतनी शीघ्रता के साथ दुराचारी दुष्ट मध्यम पाण्डव भीमसेन पर वाण-वर्षा की कि इस बात का जानना कठिन था कि वह वाणों को कब चढ़ाते हैं, और कब छोड़ते हैं।

दोनों—तब फिर क्या हुआ ?

सुन्दरक—उसके अनन्तर, महाराज ! दोनों सेनाओं के मिलने से देदीप्यमान गजाश्व-पदाति से उठी हुई धूलि-समूह से एवं चारों ओर मत्त-मातङ्ग-मण्डल से इतना निविड़ अन्धकार छा गया कि दोनों सेनाएँ, एक दूसरी को नहीं देख सकती थीं। आकाश भी दिखाई नहीं पड़ता था।

दुर्योधन—फिर क्या हुआ ?

सुन्दरक —तो फिर महाराज ! वीरों के आकर्णकृष्ट धनुष का ज्या-निर्घोष प्रलय-पयोदों के प्रचण्ड निस्वान की विडम्बना करने लगा।

दुर्योधन—फिर क्या हुआ ?

सुन्दरक—फिर महाराज ! परस्पर सिंहनाद से परिचय प्राप्त करने-वाले वीरों का युद्ध ही अपूर्व हो रहा था । कवचों से आयुधों का सङ्घटन हाने से निकली हुई अग्नि ही विद्युत्-छटा थी, रुधिर-विन्दु ही खद्योत थे, चापाकर्षण की भयङ्कर ध्वनि ही मेघ-गजन था, बाणधारा ही वृन्द थे ।

दुर्योधन—फिर क्या हुआ ?

सुन्दरक—महाराज ! तब फिर अपने ज्येष्ठ भ्राता के पराभव की आशंका से अर्जुन ने अपने रथ को उस ओर दौड़ाया । उनकी रथ-ध्वजा के अग्रभाग पर कपिकेशरी अञ्जनीकुमार वज्र-निर्घोष के समान गम्भीर गर्जना कर रहा था । शंख-चक्र-गदा-पद्म विभूषित चतुर्भुज भगवान् कृष्ण स्यन्दन को चलाते हुए अपना पांचजन्य शंख बजा रहे थे । धनंजय भी उनके साथ-साथ अपने देवदत्त शंख की कर्णज्वरोत्पादनी ध्वनि करते हुए दिशाओं के प्रतिध्वनित कर रहे थे ।

दुर्योधन—तब फिर क्या हुआ ?

सुन्दरक—तब फिर अपने पिता को भोमसेन और धनंजय से आक्रान्त देख अपने मणिविद्ध शिरस्त्राण को छोड़कर और प्रचण्ड कोदण्ड की प्रत्यंचा को श्रवण पर्यन्त खींचकर तथा दक्षिण बाहुदण्ड के निषंग से तीव्र बाण निकालकर, विशिख-पुङ्ख से सारथी को शीघ्रतापूर्वक घटनास्थल पर स्यन्दन पहुँचाने के लिए सूचित करते हुए कुमार वृषसेन तत्काल वहाँ आ पहुँचे ।

वेणी-संहार

दुर्योधन—‘ सगर्व) तब फिर ?

सुन्दरक—फिर महाराज ! आते ही आते कुमार वृषसेन ने विदलित असिलता के समान श्यामल कङ्कपक्षों से युक्त एवं श्याम-शाणशिलापर धिसे जाने के कारण अत्यन्त तीव्र विशिखों से पार्थ के रथ को कुसुमित विटप के समान आच्छादित कर दिया ।

दुर्योधन—(सहर्ष) फिर क्या हुआ ?

सुन्दरक - महाराज ! फिर तीव्र भल्ल वाणों की भयङ्कर वर्षा करते हुए अर्जुन ने कुछ हँसकर कहा, ‘अरे वृषसेन ! क्रोध करने पर सग्रामभूमि में तुम्हारे पिता रविनन्दन भी मेरे सामने नहीं ठहर सकते, फिर तुम्हारे ऐसे बालकों की तां वात ही क्या ? अतः तुम यहाँ से भाग जाओ, और बालकों के साथ जाकर लड़ो ।’ अपने पिता के प्रति इस प्रकार पराभव-गर्भित वचन सुनकर क्रोधकलित कुमार वृषसेन का मुखमण्डल ताम्रवर्णी हो गया, और अपनी भृकुटियों को भङ्ग करके उस प्रबल धनुर्धर ने आकर्णकुष्ट धनु से कृन्ती निशित विशिख प्रहार से धनञ्जय को डाटा, न कि दुर्वचन कहकर ।

दुर्योधन—धन्य कुमार वृषसेन, धन्य सुन्दरक, तब फिर क्या हुआ ?

सुन्दरक - महाराज ! इसके अनन्तर निशित विशिखाघात की पीड़ा से क्रोधित धनञ्जय ने अपने विकराल कामुक की प्रत्यञ्चा को वज्र-निर्घोष के साथ टंकारा । और अपनी शारीरिक शक्ति एवं हस्तलाघव

का कुतूहलवर्द्धक चमत्कार दिखलाते हुए बाण प्रहार से देखना तक बन्द कर दिया ।

दुर्योधन — (साभिप्राय) तब फिर क्या हुआ ?

सुन्दरक — इसके अनन्तर अपने वैरी की अलौकिक संग्राम-दक्षता को देखकर कुमार वृषसेन ने पहले की अपेक्षा कहीं अधिक भयङ्कर युद्ध करना आरम्भ किया । उस समय यह नहीं मालूम होता था कि कुमार कब अपने निषङ्ग से बाण निकालते हैं, कब प्रत्यंचा पर चढ़ाते हैं, और कब उसे शत्रु पर छोड़ते हैं ।

दुर्योधन — (सविस्मय) तब फिर क्या हुआ ?

सुन्दरक — महाराज ! इसके अनन्तर कौरव-पांडव पक्ष के योधा थोड़ी देर के लिए वैरानुबन्ध को भुलाकर, दोनों का भयङ्कर संग्राम देखते हुए, तारस्वर से कह उठे. साधु वृषसेन ! साधु ! तुम धन्य हो ।

दुर्योधन — (साश्चर्य) फिर क्या हुआ ?

सुन्दरक — महाराज ! इसके अनन्तर अखिल कोदण्ड-दीक्षा-विशारद राजन्यवर्ग की अवधीरणा करनेवाले अपने आत्मज की कौतूहल-वर्धक समरदक्षता को देखकर हर्ष, क्रोध, करुणा और संकट में पड़े हुए भी अज्ञाधिपति ने भीमसेन पर निशित विशिखों की वर्षा की, और वृषसेन पर अश्रुपूर्ण दृष्टि डाली ।

दुर्योधन — (सभय) तब फिर ?

वेणी-संहार

सुन्दरक—महाराज ! फिर दोनों पक्षां के सैनिकों द्वारा वृषसेन के साधुवाद एवं प्रात्माहन पाने से रुष्ट होकर गाण्डीवधारी पार्थ ने अश्व, सारथि, रथ, धनुष प्रत्यक्षा एवं राजचिह्न विभूषित श्वेत छत्र पर भी एक ही साथ बाण-वर्षा की ।

दुर्योधन—(भयभीत होकर) तब फिर क्या हुआ ?

सुन्दरक—महाराज ! इसके अनन्तर सुन्दर प्रत्यक्षा एवं कामुक के होने पर कुमार वृषसेन हाथ में प्रचण्ड करवाल लेकर संग्राम-भूमि में चारों ओर मड़लाने लगे ।

दुर्योधन—(समय) फिर क्या हुआ ?

सुन्दरक—महाराज ! इसके अनन्तर अपने पुत्र का स्यन्दनभंग होते देखकर क्रोधाभिभूत कर्ण ने भीम के प्रहारों की ओर ध्यान न देकर पार्थ की ओर बाणावली आरम्भ की । कुमार वृषसेन भी इतनी ही देर में दूसरे स्यन्दन पर सवार होकर अर्जुन से फिर संग्राम करने लगे ।

दोनों—धन्य वृषसेन ! धन्य ! तब फिर क्या हुआ ?

सुन्दरक—महाराज, इसके अनन्तर कुमार वृषसेन ने हँसकर कहा, अरे जनकनिन्दक बाग्मी मध्यम पाण्डव ! मेरे शर-समूह तेरे शरीर को छोड़कर और कहीं नहीं गिरते । यह कहकर उन्होंने अमंग्य बाणों से पार्थ को ढक दिया और फिर सिंहाद किया ।

दुर्योधन—(आश्चर्य) अहो ! कामलकान्तकलेवर कुमार का ऐसा लोकोत्तर पराक्रम ! तब फिर क्या हुआ ?

सुन्दरक—महाराज ! इसके अनन्तर कुमार वृषसेन की वाणावली की अवहेलना करते हुए क्रोधकलित किरीटी ने अपने रथ से एक शक्ति उठा ली जिसमें कनक-किंकरणी-जाल की झङ्कार हो रही थी और जो मेघावरो-धनिमुक्त नभस्थल के समान निर्मल थी और जिसका अग्रभाग अत्यन्त स्निग्ध और श्याम था। विविध रत्न प्रभा से चमकती हुई वह रमणीयदर्शना थी। उसी शक्ति को उन्होंने वृषसेन की ओर चला दिया।

दुर्योधन—(सविपाद) फिर क्या हुआ ?

सुन्दरक—महाराज ! इसके अनन्तर उस जाज्वल्यमान शक्ति को देखकर भानुनन्दन के हाथ से कठिन कोदण्ड, हृदय से शूर-मुलभ माहस और नेत्रों से अविरल अश्रुधारा गिर पड़ी, जिसे देखकर धनंजय हँसने लगे, और भमसेन सिंहनाद करने लगे तथा कौरव-सेना हा कष्ट ! हा कष्ट ! कहकर चीत्कार करने लगी।

दुर्योधन—(दुःख करके) तब फिर क्या हुआ ?

सुन्दरक—महाराज ! इसके अनन्तर थोड़ी देर तक ध्यानपूर्वक देखकर और अपने कठिन कोदण्ड को श्रवण पर्यन्त शींचकर कुमार वृषसेन ने अर्धमार्ग में ही उस शक्ति के इस प्रकार तीन ग्वण्ड कर दिये जैसे विरूपाक्ष रुद्र ने मन्दाकिनी के तीन भाग किये थे।

दुर्योधन धन्य वृषसेन ! धन्य ! फिर क्या हुआ ?

वेणी-सहार

सुन्दरक - महाराज ! इसके अनन्तर कल-कल मुखरित वीरों के साधुवाद से रणदुंदुभि का चण्ड निस्वान फीका पड़ गया, और सिद्ध-चारणादिकों ने आकाश से प्रसून वर्षा करके रणांगण को आच्छादित कर दिया । तब फिर अंगराज स्वामो ने कहा कि हे वृकोदर ! अभा हमारा तुम्हारा संग्राम समाप्त नहीं हुआ है, तो भो मुहूर्त मात्र के लिए मेरो बात मानकर कुमार वृपसेन और अपने भ्राता की धनुर्विद्या-पटुता को देखो ।

दुर्योधन—फिर क्या हुआ ?

सुन्दरक—फिर संग्राम से विरत होकर भीमसेन और अङ्गराज दोनों ही वैरानुबंध को एक प्रकार से तिलाञ्जलि देकर उस घोर युद्ध के दर्शक बन गये ।

दुर्योधन — (साभिप्राय) तब फिर क्या हुआ ?

सुन्दरक—उसके अनन्तर महाराज ! शक्ति खण्डन से क्रोधित होकर अर्जुन ने कहा—अरे दुर्योधन प्रमुख !.....(लज्जा का अभिनय करता है)

दुर्योधन—सुन्दरक ! कहो, कहो । यह तो दूसरे की उक्ति है ।

सुन्दरक—अच्छा महाराज ! सुनिए । अर्जुन ने कहा अरे दुर्योधन प्रमुख कोरवसेनानायको ! एवं अभिनय-नदी के कर्णधार कर्ण ! सुनो । तुम लोगों ने, मेरे पीछे, मेरे एकाकी पुत्र अभिमन्यु को मिलकर मारा था परन्तु मैं तुम लोगों के देखते ही इस कुमार वृपसेन को अभी

यमराज का अतिथि बनाता हूँ। ऐसा कहकर बड़े गर्व के साथ उन्होंने वज्र-निर्घोष के समान भयंकर ध्वनि करती हुई गांडीव-प्रत्यंचा को टंकारा, इधर कुमार ने भी अपना कालपृष्ठ कामुक सम्हाला।

दुर्योधन—(आकार को छिपाते हुए) तब फिर ?

सुन्दरक—महाराज ! इसके अनन्तर गांडीवधारी ने वृकोदर को समर-व्यापार से विरत करके अङ्गराज एवं वृषसेन के रथ-कूलों को भङ्ग करनेवाली दो बाणधाराएँ छोड़ीं, और उन्होंने भी पारस्परिक प्रेम के कारण अपने-अपने धनुर्वेदाभ्यास का अद्वितीय प्रदर्शन दिखलाते हुए उस नीच मध्यम पाण्डव को एक पग भी आगे बढ़ने न दिया।

दुर्योधन—फिर क्या ?

सुन्दरक—महाराज ! इसके अनन्तर गांडीवधारी ने बाणवर्षा से ऐसा आश्चर्यजनक व्यापार दिखलाया कि स्वामी अंगराज, कुमार वृषसेन, समरभूमि, स्यंदन, केतुवंश, सेना, सारथि, अश्व, दिशाएँ और वीरगण सभी बाणांधकार में आच्छन्न हो गये। इस बाणवृष्टि का अनुमान जलद-निस्वान की विडम्बना करनेवाले प्रत्यंचा-निर्घोष से ही किया जा सकता था।

दुर्योधन—(साश्चर्य) फिर क्या हुआ ?

सुन्दरक—महाराज ! इसके अनन्तर विशिख-वृष्टि के समाप्त होते ही पाण्डवी सेनाओं में सिंहनाद और हमारी सेनाओं में करुण-क्रन्दन

वेणी-संहार

होने लगा, और चारों ओर इस प्रकार का भीषण कोलाहल फैल गया कि कुमार वृषसेन मारे गये ।

दुर्योधन—(आँसू रोक-रोककर) फिर क्या हुआ ?

सुन्दरक—महाराज ! इसके अनन्तर मैंने कुमार को स्वर्गभ्रष्ट देवनन्दन के समान रथ में पड़े हुए देखा । उनके हृदय में एक मर्मभेदी बाण लगा था, उनके सारथि और तुरंग मार डाले गये थे तथा चमर-छत्र, चाप, केतुवंश इत्यादि सब काट डाले गये थे ।

दुर्योधन—(आँखों में आँसू भरकर) हा कुमार वृषसेन ! अब और क्या सुनना रहा ? मेरी गोद के परम प्रेमी ! हा मेरी आज्ञा का पालन करनेवाले ! हा मेरे गदायुद्ध के प्रिय शिष्य ! हा सूरसागर ! हा कर्ण-कुलांकुर ! हा प्रियदर्शन ! हा दुःशासन से अभिन्न ! हा सर्वगुरुजन के प्यारे ! मुझे उत्तर क्यों नहीं देते ?

आयत लोचन जा मुखचन्द की छाया रही चहुँ ओर उजारी ।
त्यों नव योवन के उनये, सुखमा जेहिकी अति लागत प्यारी ॥
प्रान-पयान समै विधि ने, पथरानि जबै अँखियानि मैं पारी ।
वा मुख-पंकज पै निज दीठि, कहे किमि अङ्ग महीपति डारी ॥१०॥

सूत—महाराज ! अधिक शोक मत कीजिए ।

दुर्योधन—दुःख भी तो पुण्यशाली पुरुषों को मिलता है । हमारे लिए तो—

जाके देखत सुभट बन्धु बांधव समुदाई ।
 बसैं अमरपुर जाय समर वीरन गति पाई ॥
 बहुरि अनादर-ज्वाल जासु हिय जारत ऐसे ।
 तेहि हतभागिहि दुःख-व्यथा व्यापै कहाँ कैसे ॥ ११ ॥
 (मूर्च्छित हो जाता है)

सूत—महाराज ! धैर्य धारण कीजिए, धैर्य कीजिए ।
 (वस्त्राञ्चल से हवा करता है)

दुर्योधन—(सचेत होकर) भद्र ! सुन्दरक ! तब फिर वयस्य अङ्ग-
 राज ने क्या किया ?

सुन्दरक—महाराज ! इसके अनन्तर अपने परासु पुत्र को देखकर
 निर्गलित नेत्रवारिप्रवाह की अवहेलना करते हुए और शत्रु के अस्त्रा-
 घात की अपेक्षा करते हुए उन्होंने संग्राम के लिए धनञ्जय को प्रचारा
 और सुत-संहार के कारण क्रोधित होकर तथा अपने जीवन की आशा
 छोड़कर उन्होंने अपने प्रबल पराक्रम को प्रदर्शित किया जिसे देखकर
 भीमसेन, माद्रीनन्दन और पांचाल प्रमुख वीरों ने उसके रथ को
 घेर लिया ।

दुर्योधन—तब फिर क्या हुआ ?

सुन्दरक—महाराज ! इसके अनन्तर अर्जुन के धनुष से निकले
 तीव्र बाणों से दिशामुख इस प्रकार परिपूर्ण हो गये जैसे प्रलय-पयोदां
 की जल-धारा से चारों ओर जल भर जाता है । यह देखकर शल्य ने

वेणी-संहार

कहा, हे अङ्गराज ! तुम्हारे रथाश्व मारे जा चुके हैं, और नेमि भी दूट गई है, इसलिए तुम्हारा इस समय भीमार्जुनादिकों से संग्राम करना कदापि श्रेयस्कर नहीं। ऐसा कहकर उन्होंने स्वामी अङ्गराज को भग्न रथ से उतारकर बहुत कुछ आश्वासन दिया। स्वामी ने भी बहुत कुछ विलाप करके सेवक से कहा कि मेरा दूसरा रथ लाओ। उसे देखकर उन्होंने मेरी ओर दृष्टिपात किया, और कहा कि सुन्दरक, यहाँ आओ। मैं उनके पास गया। तब उन्होंने अपने सिर की पट्टी खोलकर शरीर से बहते हुए रुधिर में बाण के डुबोकर महाराज आपके लिए यह संदेश लिखा।

(पत्रिका देता है)

दुर्योधन—(लेकर पढ़ता है) महाराज दुर्योधन का कल्याण होवे, कर्ण समरभूमि से गाढ़ालिंगन-पुरस्सर आपके लिए यह अन्तिम सन्देश भेजता है—

आयुधधारिण मैं यहि लौं, जग में नहिं कोउ लही निपुणार्ई ।
हैं यह बन्धुन सों बढिंकेँ, लड़िंकेँ यहै पांडु चमू विचलाई ॥
यो सन्मानहिं पाय सक्योँ, रन में न दुशासन शत्रु गिरार्ई ।
वा दुख को बदलो बल सों, अथवा अँसुवानि सों लीजो चुकार्ई ॥१२॥

दुर्योधन—वयस्य कर्ण ! मेरे सौ भाइयों के मारे जाने पर भी तुम मुझे वचन-बाणों से इस प्रकार पीड़ित कर रहे हो। अरे—
सुन्दरक ! इस समय अङ्गराज क्या कर रहे हैं ?

सुन्दरक—महाराज ! इस समय वह अपना तन-त्राण उतारकर और प्राणों को हथेली पर रखकर युद्ध करने जा रहे हैं ।

दुर्योधन—(सुनकर और सहसा उठकर) सुन्दरक ! तुम मेरी आज्ञा से अभी जाकर वयस्य अङ्गराज से कह दो, कि ऐसा दुस्साहस न करें । मेरा भी संकल्प तुम्हारी ही तरह है । मैं भी प्राणों की आहुति देने की इच्छा रखता हूँ—किन्तु—

पांडव को रन मारिके बन्धुन कौँ सुवानि की अंजलि दैके ।
मन्त्रिन शत्रुन संग सवै, विधि वामता पै सरो रोदन कै के ।
जासु न होन की आस कबौँ, सोई अन्तिम गाढ़ो अलिंगन लैके ।
छोड़िहै या तन को तुव संग, सवै सुख-दुःखनि मैं मन दैके ॥१३॥
अथवा शोक के विषय में अब मुझे कहना ही क्या रहा ।

सुत नहिं वह वृषसेन तव, मम न दुशासन भाय ।

सम दुख हम दोऊन को, को समभावै आय ॥ १४ ॥

सुन्दरक—महाराज की जैसी आज्ञा हो । (प्रस्थान)

दुर्योधन—जल्दी ही मेरा रथ ले आओ ।

सूत—(कान लगाकर) महाराज ! नेमि-ध्वनि सुनाई पड़ रही है ।

दुर्योधन—सूत ! तुम जाओ, जल्दी मेरा स्यन्दन तैयार करके लाओ ।

सूत—महाराज की जो आज्ञा । (जाकर फिर लौटता है)

दुर्योधन—(देखकर) अरे क्या तुम अभी रथ पर सवार नहीं हुए ?

वेणी-संहर

सूत—महाराज ! अरे ये तो महाराज और महाराणी अम्बा दोनों सज्जय के साथ रथ पर बैठे हुए इधर आ रहे हैं ।

दुर्योधन—(देखकर) अरे यह तो दुर्दैव का बड़ा बीभत्स व्यापार है । हे सूत ! तुम जाकर अभी मेरा रथ ले आओ, जिससे मैं पिताजी से बिना मिले हुए, एकान्त में जाकर बैठूँ ।

सूत - महाराज ! अब आप ही इनके एकमात्र अवलम्बन हैं, इस-लिए आप जाकर इन्हें धैर्य क्यों नहीं बँधाते ?

दुर्योधन—विधाता मेरे विरुद्ध हैं । मैं इन्हें कैसे धैर्य बँधाऊँ ? देखो—

मात-पिता दिग तें अबहीं, रन में जेहिकौ अपने सँग लायो ।

मेरो, दुशासन को सिर सूँघिकै, दोउन ने अतिसै सुख पायो ॥

भीम करी यह ताकी दसा, हिय फारि के सोनित माहिं नहायो ।

काह कहें तिनके दिग जाय कै, भाय को यौं रन माहिं गँवायो ॥१५॥

तथापि गुरुजनों की वन्दना अवश्य करनी चाहिए ।

(दोनों का प्रस्थान)

चतुर्थ अङ्क समाप्त ।

पञ्चम अंक

(रथारूढ़ गान्धारी, सञ्जय एवं धृतराष्ट्र का प्रवेश)

धृतराष्ट्र—वत्स सञ्जय ! कहे कौरव-कुल-कानन का एकमात्र अवशेष अङ्कुर, मेरा दुर्योधन कहाँ है ?

गान्धारी—प्रिय ! यदि मेरा पुत्र सचमुच ही जीवित है तो बतलाओ कि वह कहाँ है ।

सञ्जय—देखिए महाराज दुर्योधन अकेले ही बटवृत्त की छाया में बैठे हुए हैं ।

गान्धारी—(सकरुण) अरे प्यारे ! उसे अकेला क्यों कहते हो ? क्या सौ भाई उसके निकट नहीं हैं ?

सञ्जय—हे तात ! हे अम्ब ! स्वेच्छापूर्वक स्यन्दन से उतर आइए ।

(सब लोग उतरते हैं)

(लज्जित एवं बैठे हुए दुर्योधन का प्रवेश)

सञ्जय—(पास जाकर) महाराज की जय हो । महाराज ! देखिए यह तात और अम्बा दोनों ही आपके पास आये हैं । महाराज क्या देखते नहीं ?

(दुर्योधन लज्जा का अभिनय करता है)

वेणी-संहार

कौच-विहीन कलेवर ते, गहि दंशिका सों सर-जाल निकारत ।
घायनि बाँधि पटी हरुवे, रविनन्दन मैं खरी प्रीतिहि पारत ।
दूरहि ते रन-खेत गिरे, नरनाहनि को करुग कै निहारत ।
हौं नहिं पूछि सक्यों कुसलात, लखैं सुत ! वेदना सो तुम्हें आरत॥१॥

(धृतराष्ट्र और गान्धारी स्पर्श करके भेंटते हैं)

गान्धारी—वत्स ! दीर्घ बाणों की वेदना से पर्याकुल होने के कारण हम लोगों के उपस्थित होने पर भी तुमसे बोला नहीं जाता ।

धृतराष्ट्र—वत्स दुर्योधन ! आज तो मेरे प्रति तुम्हारा व्यवहार अपूर्व ही है ।

गान्धारी—(सकरुण) वत्स ! यदि तुम हमसे इस समय नहीं बोलते, तो क्या दुःशासन, दुर्मर्षण अथवा और कोई भी न बोलेंगा ?

(विलाप करती है)

दुर्योधन—

बदलो सक्यों चुकाय नाहिं बन्धुनि बध केरो ।

भयो दुःख को हेतु जनक जननी मैं तेरो ॥

बिमल निशाकर-वंश माहिं मेरे सम पापिहि ।

मानत क्यों निज तनय अखिल अन्वय संतापहि ॥ २ ॥

गान्धारी—प्रिय वत्स ! मत रोओ । अब तो इस अंधे दम्पति के तुम्हीं एकमात्र आधार हो । ईश्वर तुम्हें दीर्घायु प्रदान करें । मुझे राजसिंहासन अथवा विजय की कोई कामना नहीं है ।

दुर्योधन—

कहत दुःख बस आज मातु बतियानि अनैसी ।
कर विधुबंस विभूति दीनता या कहँ ऐसी ॥
हूँ निदर्श नहीं करत सोक सत-सुवन-निधन के ।
सब विधि जौन अयोग सोक तेहि दुर्योधन के ॥ ३ ॥

अवश्य ही सुत-शोक का यह परिणाम है ।

संजय—महाराज ! क्या आपके यह लोक-प्रवाद भूल गया कि,
कुम्भ यदि कूप में गिर जाय, तो रज्जु भी उसके साथ नहीं डाल देना
चाहिए?

दुर्योधन—यह युक्ति सर्वथा चरितार्थ नहीं होती। उपकार पात्र
का अभाव होने से उपकार साधन से क्या लाभ ?

(रोता है)

धृतराष्ट्र—(दुर्योधन के भेटकर) वत्स ! शान्त हो, शान्त हो ।
इस समय मुझे और अपनी वृद्धा माता के धैर्य बँधाओ ।

दुर्योधन—तात ! आपके धैर्य बँधाना कठिन है, परन्तु—

निहत सुवन कुन्ती सहित, ताते आँसु बहाय ।

तुमहूँ दोऊ लीजियो, वाके दुःख बटाय ॥ ४ ॥

गांधारी—प्रिय पुत्र ! इस समय इतना ही पर्याप्त है । केवल
तुम्हीं जीवित रहो, जिससे मुझे और पुत्रों का शोक न करना पड़े ।

वेणी संहार

युद्ध व्यापार छोड़ दो, मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ। अपने पिता की अन्तिम आज्ञा का तो पालन कर लो।

धृतराष्ट्र—वत्स ! अपनी माता की बात मानो। अब तो हमारे अशेष बन्धु-वर्ग भी इस समर-यज्ञ में आहुति हो गये, इसलिए नितान्त असहाय इस वृद्धांध धृतराष्ट्र के वचन मानो।

जिन बल पाय गन्यो कछूहू न बन्धुन को,

भीषम, गुरुहि, तिन रन में गिरायेो है।

देखतैं करन के नसायेो वृषसेन प्रान,

याही ते अतंक जग पारथ को छायेो है ॥

भाइन सँहारि एक तेरी जंघ तोरिबे की,

पूरन प्रतिज्ञा मैं अराति न लायेो है।

छाँड़ि अभिमान नेकु मन में विचारौ, अन्ध-

मातु-पितु-पालन-समय सो सुत आयेो है ॥ ५ ॥

दुर्योधन—संग्राम के अतिरिक्त और क्या करना चाहिए ?

गान्धारी—पुत्र ! तुम्हारे पिता तथा विदुरजी जैसा कहें वैसा करो।

सञ्जय—राजन् ! बात तो ऐसी ही है।

दुर्योधन—सञ्जय ! क्या अब भी कुछ उपदेश देना रह गया ?

सञ्जय—महाराज ! विजय की कामना रखनेवाले नरेश्वरों को आमरण पण्डितों से उपदेश ग्रहण करना चाहिए।

दुर्योधन—(सक्रोध) अब हम भी तुम जैसे परिडितमन्य लोगों से अपने अनुरूप उपदेश ग्रहण करें ।

धृतराष्ट्र—वत्स ! यथार्थवादी सञ्जय पर इस प्रकार क्यों रुष्ट हो रहे हो ? यदि तुम कुछ शान्त हो जाओ तो मैं तुमसे कुछ कहूँ और तुम सुनो ।

दुर्योधन—पिताजी, कहिए ।

धृतराष्ट्र—अधिक क्या कहें, अब भी तुम युधिष्ठिर से उचित प्रतिबन्धकों पर समझौता कर लो ।

दुर्योधन—तात ! पुत्रस्नेह के कारण आप, विकलता के कारण माताजी तथा मूर्खता के कारण सञ्जय भले ही ऐसा प्रलाप करें, परन्तु आपको यह व्यामोह शोभा नहीं देता । अथवा पुत्रनाश का सन्ताप भी तो बड़ा विकट होता है । और फिर दूसरी बात यह है कि जब अपने बन्धु-बांधवों से संपन्न और कृष्ण के द्वारा उपस्थित किये हुए संधि-प्रस्ताव के भी जिस दुर्योधन ने ठुकराया था, वही आज भीष्म, द्रोण एवं भ्रातृ-शत तथा असंख्य सहायक राजन्य-वर्गों के मारे जाने पर भीषण भविष्य एवं सज्जन-लज्जाकारी संधि, के स्वार्थ भाव में प्रेरित होकर, कैसे स्वीकार करें ।

हीन अरिन सेां सन्धि कहूँ, भूलि न करत महीप ।

भयो दुसासन-रहित मैं, वाके बन्धु समीप ॥ ६ ॥

वेणी-संहार

धृतराष्ट्र—वत्स ! इतना होने पर भी युधिष्ठिर मेरी प्रार्थना से क्या न करेगा ? दूसरी बात यह है कि युधिष्ठिर सब प्रकार से अपने को तुमसे हीन समझता है ।

दुर्योधन—सो कैसे ?

धृतराष्ट्र—सुनो, युधिष्ठिर की प्रतिज्ञा है कि मैं अपने किसी भी सहोदर के विपत्ति में पड़ने पर कदापि प्राण धारण न करूँगा । क्योंकि, युद्ध में छल-छन्द का आधिक्य रहता है, इसलिए उन्हें अपने भ्रातृ-निधन की आशंका भी लगी रहती है, इसलिए तुम जैसा कहोगे वह उसी के अनुसार सन्धि करने को तैयार होगा ।

सञ्जय—बात तो ऐसी ही है ।

गान्धारी—अपने पिता के युक्ति-युक्त वचनों का प्रमाण करो ।

दुर्योधन—पिताजी, माताजी और सञ्जय !

एकै सहोदर के गिरतै रन, पारथ पैज करी निज प्रान की ।

भाइन युद्ध जुभाय सबै, दुर्योधन आसा करे निज त्रान की ।

फोरौं गदा सों वृकोदर सीसन, कै सुधि बन्धु के सोनित वान की ।

कौन सो आनन लै तिन सङ्ग करौं यह सन्धि महा अपमान की ॥७॥

गान्धारी—हाय ! प्यारे दुःशासन, दुर्मर्षण ! हाय ! विकरण, हाय वीरशत-प्रसविनी गान्धारी—तूने सौ दुःखों को जन्म दिया था, सौ पुत्रों को नहीं । (सब का रोना)

सञ्जय—(आँसू बहाकर) हे तात ! हे अम्बा ! आप तो यहाँ महाराज को समझाने आये थे, इसलिए आप स्वयं धैर्य धारण करें ।

धृतराष्ट्र—वत्स दुर्योधन ! विधाता तुमसे इस प्रकार विमुख है, और तुम अब भी शत्रु-विषयक अभिमान छोड़ने को तैयार नहीं हो, तो बतलाओ कि यह तपस्विनी गान्धारी किसकी शरण जाय, जिसके तुम्हीं एकमात्र अवलम्ब हो या मैं किसका सहारा लूँ ?

दुर्योधन—सुनिए—

भोग्यो सबै विभव दबायो निज वैरिन को,

जिनको सुयश धरा दिश दिश छाियो है ।

जिनके चरन अरविन्दन पै आय नित,

मण्डल महीपन को निज सिर नायो है ।

शत्रु सत आय समुहाय रनखेतन में,

प्राननि गँवायो पै न पीठि को दिखायो है ।

सगर समान तात मात हिय धरि धीर,

तिनको वियोग सहौ विधि ने सहायो है ॥ ८ ॥

इसके विपरीत आचरण से क्षात्र-धर्म का उल्लंघन होगा ।

(नेपथ्य में भीषण कोलाहल)

गान्धारी—(सुनकर भय से) यह वाद्यों के महा शब्द के साथ हाहाकार-मिश्रित रव कहाँ से सुनाई पड़ता है ?

वेणी-संहार

सञ्जय—माताजी ! कायरों के हृदय को भयभीत करनेवाला यह स्थान ही ऐसा है । यहाँ तो ऐसा शब्द होता ही रहता है ।

धृतराष्ट्र—वत्स सञ्जय ! यह भैरव हाहाकार चारों ओर से फैल रहा है, इसका पता लगाओ । इसका कोई विशेष कारण भी होगा ।

दुर्योधन — पिताजी ! आप प्रसन्न हों । दैव तो सर्वथा ही हमारे प्रतिकूल है, इसलिए जब तक कोई अनिष्ट संवाद सुनने का अवसर न आवे, तब तक मुझे संग्राम में जाने की आज्ञा दीजिए ।

गान्धारी—प्रिय पुत्र ! मुझ मन्दभागिनी को थोड़ी देर तक तो आश्वासन दो ।

धृतराष्ट्र—यद्यपि तुमने इस समय युद्ध में शत्रु का समूलोन्मूलन ही निश्चय कर लिया है, तथापि एकान्त में उनके वध का उपाय सोच लो ।

दुर्योधन—

मारे हमारे बन्धु जिन, मम देखतै रन में अहा ।

एकान्त मैं तिनको निधन कै, तात मैं कीन्हो कहा ॥ ६ ॥

गान्धारी — पुत्र ! तुम तो अकेले हो; तुम्हारी सहायता कौन करेगा ?

दुर्योधन —

हैं शत्रु केते मातु मैं तुव तनय-घातक एकही ।

यदि दैव है अनुकूल तो पाण्डव रहित हूँ है मही ॥ ६ ॥

(नेपथ्य में केलाहल के अनन्तर)

हे सैनिक वीरो ! आप लोग कौरवेश्वर से कह दें कि भीषण सेना-
पंहार होने लगा है, इसलिए अनिष्ट-समाचार सुनने से मुँह न फेरना
चाहिए, प्रत्युत कालानुरूप अनुष्ठान करना चाहिए । देखिए—

छाँड़े लगाम निरास हूँ घायल, पारथ-वानन से सवै गात है ।

मारग के परिचै से तुरङ्ग, लिये रथ मन्दुरा को समुहात है ।

आँखिन तै आँसुवा बरसाय, कहै रविनन्दनि-पात की बात है ।

शल्य कँपाय कै कौरव हीय धक, सूने रथै सिवरै लिये जात है ॥१०॥

दुर्योधन - (सुनकर) शङ्कित होकर, अरे यह अशनि-निर्घात के
त्तमान दारुण घोषणा कौन कर रहा है ? क्या कोई यहाँ है ?

(भयभीत सूत का प्रवेश)

सूत—हाय ! हाय मर गये, मर गये । (पृथ्वी पर गिर पड़ता है)

दुर्योधन—कहो, कहो !

धृतराष्ट्र और सञ्जय—कहो, कहो ।

सूत—महाराज ! और क्या कहें ?

करन-रहित रथ पै चढ़यो, शल्यहि लखि भरि नैन ।

हृदय-विदारी शल्य सम, भइ मूर्च्छित सब सैन ॥११॥

दुर्योधन—हाय वयस्य कर्ण !

(मूर्च्छित हो जाता है)

गान्धारी—पुत्र ! धीरज धरो, धीरज धरो ।

धृतराष्ट्र—हाय ! बड़ा कष्ट हुआ ।

वेणी-संहार

गिरे द्रोण गांगेय के, जापै बाँधी आस ।

सुवन सुहृत् राधेय सो, बन्यो काल को प्रास ॥ १२ ॥

वत्स ! धैर्य धरो, धैर्य धरो । निश्चय ही यह विधाता भरतकुल के विरुद्ध है ।

दीठि हरी दोउ नैननि की, सत पुत्रनि नास को सोक सहाये ।

नारी पतिव्रता सङ्ग हहाँ, तुम ऐसी दशा मैं हमें पहुँचाये ।

राजकुमार के बन्धु गुरू, अरु मित्रनि को रन माहिँ गिराये ।

आजहूँ बापै अरे निरदै विधि ! लाज न आवत दीठि लगाये ॥ १३ ॥

वत्स दुर्योधन ! दुर्योधन ! धैर्य धरो, धैर्य धरो । अपनी इस तप-स्विनी माता को आश्वासन दो ।

दुर्योधन—(सचेत होकर)

हे प्रिय-दरसन करन अचल आनंद मोहिं दीजै ।

श्रवन-सुखद बतियानि आय मेरे दिग कीजै ।

कबहूँ अप्रिय नहिँ कियो, भयो सब विधि असहाई ।

चले आप वृषसेन पास मोहिं हाय बिहाई ॥ १४ ॥

(फिर मूर्च्छित हो जाता है)

(सब लोग धैर्य दिलाते हैं)

दुर्योधन—

रन जूझे मम प्रानप्रिय, अङ्ग-नृपति हा तात ।

धीर धरन की बात का, साँसहुँ लेत लजात ॥ १५ ॥

और भी—

सोचौँ दुशासन को कहा जेहि भीम नै या विधि हन्यो ।
निज बन्धु-बांधव-निधन कौ, दुख नेकहूँ नहिं ये गिन्यो ।
जिन अङ्ग भूपति को पठायो धरा सो सुरधाम है ।
तेहि बंस को संहार करियो एक मेरो काम है ॥ १६ ॥

गान्धारी—पुत्र ! इस प्रकार आँसू बहाना बन्द करो ।

मोहित तजत सरीर लखि, कोऊ न रोके तोहि ।

अँसुवा ढारत तासु लागि, क्यों रोकत जन मोहि ॥ १७ ॥

धृतराष्ट्र—सूत ! हमारे कुल के समूलोन्मूलन करने की इच्छा से
यह असम्भव कर्म किसने किया ?

सूत—राजन् ! लोग कहते हैं कि—

निरखि तिन्हें महि माहिं अखिल सेना संहारी ।

चक्रायुध-सारथी खैंचि अपने धनु भारी ॥

रथ चाका महि फँस्यो उठावन में जब लाग्यो ।

दीन्यो बान प्रहारि भानुसुत प्राननि त्याग्यो ॥

रन तीरथ कुरुखेत पार्थ-सम याचक पाई ।

दियो प्रान की भीख दानि की बानि दृढ़ाई ॥ १८ ॥

दुर्योधन—कितने दुःख का प्रसङ्ग है कि—

करन-बधन-बिधु सुमिरि कै बाढ़त सोक-पयोधि ।

तऊ क्रोध बड़वा अनल, राखत ताहि निरोधि ॥ १९ ॥

केशी-संहार

तात, अम्बा—प्रसन्न हो, प्रसन्न हो ।

नितहि दुसह सोकज अनल मोहिं जरावत आय ।

मनभावत सम विपत्ति यह अवसि जुरो रन जाय ॥ २० ॥

धृतराष्ट्र—(दुर्योधन को भेटकर रोते हुए)

सहसा किये काजन माहिं सदा, सुत संसय को निहचै ही निवास है ।
करिकै सुधि भीम की भीम गदा, निपटै हमरो हियो होत हरास है ॥
अभिमान-धनी लला संगर को, छर-छन्द नहीं तुम्हरे कोऊ पास है ।
छलिया सबै पाण्डवनन्दन हैं, समुहाय रनै सब ही विधि भास है ॥ २१ ॥

गान्धारी—हे पुत्र ! क्या तुमने उसी वृकोदर से युद्ध करना निश्चय किया है, जिसने मेरे सौ पुत्रों का संहार किया है ?

दुर्योधन—वृकोदर की तो बात ही क्या है !

मम हिय को अभिलाष, नयन-विधु-विमल मुहावन ।

जासु गात को परस सबै विधि सुख सरसावन ॥

मातु तिहारो, तनय तात नृप शिष्य तिहारौ ।

करौं तासु संहार हन्यो जिन मित्र हमारौ ॥ २२ ॥

हे सूत ! अब अधिक विलम्ब करना व्यर्थ है, रणायुधों से सुसज्जित मेरा स्यन्दन अभी ले आओ । यदि तुम पाण्डवों से भयभीत हो रहे हो, तो कोई बात नहीं । मैं एकमात्र गदा को लेकर अभी रणाङ्गण में उतरता हूँ ।

सूत—महाराज ! आप ऐसा न समझें, मैं आ गया । (प्रस्थान)

धृतराष्ट्र—वत्स दुर्योधन ! यदि तुमने हम लोगों के दग्ध करने के लिए युद्ध ही निश्चय कर लिया है, तो अभी इन अवशिष्ट वीरों में से किसी को सेनापति बना लो !

दुर्योधन—उसके तो मैंने निर्वाचित कर लिया ।

गान्धारी—प्रिय पुत्र ! वह कौन है जिस पर मैं अपनी आशा लगाऊँ ?

धृतराष्ट्र—क्या शल्य है या अश्वत्थामा ?

संजय—हाय ! बड़ा कष्ट हुआ —

गिरे द्रोण गांगेय रत्न, गिरे करन से मीत ।

शल्य पाण्डवन जीतिहैं, नृप को यह परतीति ॥ २३ ॥

दुर्योधन—अश्वत्थामा से क्या और शल्य से ही क्या ?

सपदि धनञ्जय प्रानहर करन मिलावनहार ॥

अपनों ही अभिषेक मैं, करत नयन जलधार ॥ २४ ॥

(नेपथ्य में वेलाहल)

अरे कौरव-सेना के प्रमुख वीरो ! हम लोगों को देखकर इस प्रकार इधर-उधर भागने में क्या रक्खा है ? आप लोग बतलावें, कि दुर्योधन कहाँ है ।

(सब का ध्वराहट के साथ सुनना)

(ध्वराकर आया हुआ)

सूत—महाराज !

चढ़ि आये एकै रथहि, पूछत तुम कहैं तात ।

वेणु-संहार

सब—कौन, कौन ?

सूत —

हन्यो दुसासन एक जिन कीन्हों करन निपात ॥ २५ ॥

गान्धारी—(सभय) प्रिय पुत्र ! इसका क्या उपाय किया जाय ?

दुर्योधन—माताजी ! यह गदा तो मेरे पास रखी है ।

गान्धारी—हाय ! मैं मन्दभागिनी तो मर गई ।

दुर्योधन—माताजी ! इस प्रकार दीनता प्रदर्शन का यह कोई अवसर नहीं है । सञ्जय ! रथ पर बिठलाकर माता-पिता को शिविर में पहुँचा दो । मेरा शोकापनोदन करनेवाले लोग आ गये हैं ।

धृतराष्ट्र—प्रिय पुत्र ! थोड़ी देर के लिए ठहर जाओ, जिससे इनका अभिप्राय तो जान लूँ ।

दुर्योधन—पिताजी ! इसमें क्या रक्खा है, अब आप जायें ।

(रथारूढ़ भीमाजुन का प्रवेश)

अरे दुर्योधन के अनुजीवियो ! तुम लोग क्यों भयभीत होकर भाग रहे हो ? हम लोगों से मत डरो ।

लाख-गृह आगि दै, खिलैबे मैं कपट-घूत,

जाके मनु नैसुक सकोचहूँ नहीं भयो ।

लायकै सभा में खैच्यौ द्रुपद-सुता को चीर,

दास-पद हरषि हिये मैं हमको दयो ।

जेठो सत बन्धुन को, अग्रज दुसासन को,
अमित मितार्ई जाने भानु-सुत सो डयो ।

आये हम देखन बतावौ तुम कोऊ किन,
वह अभिमानी दुर्योधन कितै गयो ॥ २६ ॥

धृतराष्ट्र—सञ्जय ! इन दुष्टों का अधिक्षेप भी बड़ा दारुण है ।

सञ्जय—महाराज ! इन्होंने अपने क्रूर कार्य-कलापों से सर्वथा हमारा
अप्रिय किया है; और ये अपने वचनों से भी हमारा अप्रिय कर रहे हैं ।

दुर्योधन - सूत ! तुम जाकर कह दो, यहीं बैठे हैं ।

सूत—महाराज की जैसी आज्ञा । (उनके पास जाकर) हे
भीमार्जुन ! महाराज यहाँ तात और अम्बा के साथ वट-वृक्ष की छाया
में बैठे हुए हैं ।

अर्जुन - आर्य ! आप प्रसन्न हों, हमें सुत-शोक-पीड़ित माता-
पिता के सान्निध्य में जाकर उन्हें इस प्रकार छेड़ना उचित नहीं ।

भीम—अरे मूढ़ ! सदाचार की अवहेलना कभी न करना चाहिए ।
गुरुजनों का बिना अभिवादन किये हुए चले जाना अच्छा नहीं । (पास
जाकर) सञ्जय ! तुम तात, अम्बा को हमारी ओर से प्रणाम कर दो
अथवा ठहर जाओ मैं स्वयं प्रणाम करता हूँ ।

(दोनों रथ से उतरते हैं)

भीम—अपना काम और नाम सुनाकर ही गुरुओं की वन्दना
करनी चाहिए ।

वेणी-संहार

अर्जुन—(आगे बढ़कर और पास जाकर) हे तात, हे अम्बा !
तो सुत ने अरि-वृन्द-विनाश की, जामें खरी अभिलाष दृढ़ाई ।
जा बल पाय कै या जग को, तृण-तूल लखो अभिमान बढ़ाई ।
देखति ही सब लोगनि के, हठि प्रानन सूत-तनै के नसाई ।
पारथ मध्यम पांडु को नन्दन, तात प्रनाम करै तुम्हैं आई ॥२७॥

भीम—तुव सत-पुत्रनि समरभूमि महँ जिन संहारो ।
पियो दुसासन-रुधिर भयो ताते मतवारो ॥
कुरुपति को उरु-भंग-करन परतिज्ञा धारे ।
सोइ कर जोरि निहोरि भीम पग परत तुम्हारे ॥ २८ ॥

धृतराष्ट्र—अरे दुरात्मा वृकोदर ! अपनी व्यर्थ की प्रशंसा न करा
केवल तुभी ने शत्रुओं का अपकार नहीं किया है, किन्तु समग्र समर-
विजयी क्षत्रियों ने वीरों को मारा है, इस प्रकार आत्मश्लाघा से हमें
व्यथित करना व्यर्थ है ।

भीम—पिताजी ! आप इस प्रकार क्रोध न करें ।

सभा माहिँ जाने गह्यो पांचाली के केस ।
तिन्ह निज कोप-कृसानु महँ कीन्ह भसम अवसेस ॥
कीन्ह भसम अवसेस शलभ नृप-कुलहि बनाई ।
जिन्ह देख्यो यह काज राज-मरजाद विहाई ॥
निज बल भुज को दर्प धारि हम नाहिँ सुनावत ।
कीन्हों सन्तति नीच कर्म सो तुमहिँ गिनावत ॥ २९ ॥

दुर्योधन—अरे मरुतनन्दन ! वयोवृद्ध महाराज के सामने अपने निन्दित कार्य-कलापों की चर्चा इस प्रकार करता है !

खैंचो कर गहि केस मोर आयसु सिर धारी ।

तुव नर-पशु वहि नीच अधम अर्जुन की नारी ॥

धर्मज-नृपति-कलत्र माद्रि-नन्दन की जाया ।

तुमहुँ सभा महुँ रहे चली नहिं रावरि माया ॥

जिन नृपन हन्यो तुम युद्ध महुँ तिनके अपराधहि कहौ ।

विन जीते मोहिं भुजबल-धनिहि गर्व वृथा ही को गहौ ॥३०॥

अरे दुरात्मा ! ऐसा नहीं हो सकता ।

(सक्रोध उठकर मारने की इच्छा करता है । भीम क्रोध का अभिनय करता है)

अर्जुन—(रोकते हुए) आर्य प्रसन्न हों, प्रसन्न हों । इस पर क्रोध करना व्यर्थ है ।

यह जलपत कटु वचन धारि रोषहि मन माहीं ।

पै खल सकत दिखाय कछू अपनो बल नाहीं ॥

सत बन्धुनि रन हन्यो भयो यहि लागि दुखारी ।

जो चाहै सो कहै कछू नहिं हानि हमारी ॥ ३१ ॥

भीम—अरे भरत-कुल मयङ्ग-कलङ्क !

देतो तोहिं पठाय अवसि दुःशासन पाहीं ।

जो यह पारथ मोहिं अबहि रोकत हठि नाहीं ॥

वेणी-संहार

गरुई गदा घुमाय छुनहिं तुव सीस प्रहारी ।

करतो तेरो अंत अस्थि-पंजर चटकारी ॥ ३२ ॥

अरे मूढ़ ! और भी सुन—

अबला सरिस तुम सोक त्यागो नयन-वारि बहाय ।

निज बन्धुहूँ को बच्छ-दारन लख्यो आँखिन आय ॥

है दुष्ट नरपति यह सबै तुव जियन को परिनाम ।

कुरुवंश-नलिनी-गज-वृकोदर जब भयो यह वाम ॥ ३३ ॥

दुर्योधन—अरे दुरात्मा ! भरत-कुल-कलङ्क ! द्यूतदास ! पाण्डवा-
धम ! मैं तेरी तरह वाचाल नहीं हूँ ।

गदा भिन्न सेवत मही, लैहैं बन्धु निहारि ।

उर सुसोनित भीगे विपुल भीषन भूषन धारि ॥ ३४ ॥

भीम—(हँसकर) यदि ऐसी ही बात है तो आप पर अविश्वास
करने का कोई अवसर नहीं; तथापि निकट भविष्य की बात
कहता हूँ ।

दोऊ निज प्रबल प्रचण्ड बाहुदण्डन सेां,

गरुई गदा को जवै रोष कै प्रहारिहौं ।

देखत महीपन के तोरि वह जंघ प्रात,

मेरे अभिमानी तेरे सीस लात मारिहौं ।

बाँधि तुव बन्धुनि बहाय कै रुधिर-धार,

केसनि ते पाँयन लौं अङ्गनि पखारिहौं ।

गाढ़े-सद्य सोनिन को चन्दन लगाय तन,

भीषन विभूषन सेँ या विधि सँवारिहौँ ॥ ३५ ॥

(नेपथ्य में)

अरे भीमार्जुन ! अखिल-अरातिवृन्द का वध करके भृगुराम के समान अभिराम सुयश को प्राप्त करके तथा दिगन्तों तक अपने प्रचण्ड प्रताप का प्रसार करके अजातशत्रु श्रीमान् युधिष्ठिर महाराज आज्ञादेते हैं ।

दोनों—महाराज की आज्ञा क्या है ?

(फिर नेपथ्य में)

रन मारे गये वर वीरन की, गहि देहनि लोग चिता महुँ डारे ।

अँसुवनि मिली जल-अञ्जलि को, तिनके हित ते करि सोकहि डारे ॥

खुतरो जिन गातनि गीधनि नै, तिनको शव-कानन सो लै निकारे ।

अथये रिपु के बल साथ ही भानु सबै दल को इक ठौर हँकारे ॥ ३३ ॥

दोनों—महाराज ! जो आज्ञा हो ।

(दोनों का प्रस्थान)

(नेपथ्य में)

अरे अर्जुन ! गांडीवधारी ! अनन्तबलशाली, अब कहाँ को जा रहे हैं ?

अंगराज पै क्रोधित हूँ अब लौँ, धन धारयो नहीं तुमैं जीतनवारौ ।

तुम या लगि वीर-विहीन मही, बन माहिँ अपार अतंक पसारौ ।

वेणी-संहार

पितृ सीस छुए की गुने बतियाँ, जब ही रन में तिन आयुध डारौ ।

कलपानल पांडु-अनी को, पचाल-चमूँ-जम द्रोणि इतै पगु धारौ॥३७॥

धृतराष्ट्र — (सहर्ष सुनकर) वत्स दुर्योधन ! द्रोण-वध के पराभव से प्रदीप्त क्रोध-पावक अपने पिता से अधिक बली धनुर्विद्या-विशारद अश्वत्थामा आ गया है, अतः आगे बढ़कर इस अद्वितीय वीर का स्वागत करो ।

गान्धारी—पुत्र ! इन महानुभाव का सम्मान करो ।

दुर्योधन - तात ! अम्बा ! कर्णवध की अभिलाषा करनेवाले एवं व्यर्थ योवन, अस्त्र एवं बल को धारण करनेवाले इस अश्वत्थामा से क्या लाभ ?

धृतराष्ट्र — वत्स ! इस समय इस प्रकार पराक्रमशाली वीरों का विराग अपने वचन-मात्र से उत्पन्न न करो ।

(अश्वत्थामा का प्रवेश)

अश्वत्थामा—कौरवेश्वर की जय हो ।

दुर्योधन - (उठकर) गुरुनन्दन ! इधर आइए ।

(बिठाता है)

अश्वत्थामा — महाराज दुर्योधन !

श्रवन-सुखद बतियाँ करन कीन्हें यदपि अनेक ।

पै नहिं सक्यो दिखाय वह, रन में कैसहुँ एक ॥

द्रौन-तनय आयौ इतै, धरे सरासन हाथ ।

चिन्ता सब प्रतिकार की तजि दीजै नरनाथ ॥ ३८ ॥

दुर्योधन—(सासूय) गुरु-नन्दन !

अङ्ग महीपति गिरे तमहुँ रन मैं समुहाई ।

लीनौ निज अभिलाष लाख द्विजराज ! पुजाई ॥

नैसुक धरि हिय धोर अंत लखि लीजै मेरौ ।

कर्न सुयोधन माहिं कछू अन्तर न घनेरौ ॥३९॥

अश्वत्थामा—(अपने आप) अब भी कर्ण में इतना पक्षपात, और मेरा इतना अनादर ! (प्रकट) राजन् ! कौरवेश्वर ! ऐसा ही सही ।

(प्रस्थान)

धृतराष्ट्र—वत्स ! तुम्हारा यह कैसा व्यामोह है, जो तुम ऐसे आपत्काल में भी अपने पुरुष वचनों से अश्वत्थामा ऐसे महाभाग वीर-पुङ्गव का विराग उपन्न करते हो ।

दुर्योधन मैंने कौनसा अप्रिय अथवा अतथ्य वचन कहा है ? अथवा यह क्रोध करने की बात नहीं है, देखो—

विधि वाम की विपरीत गति सेां सेां गयो सुरधाम ।

धनुधारि छत्रिन ने लिख्यो रन जासु कीर्ति ललाम ॥

मम सामुहें यह भानु-सुत की करत निन्दा तात ।

या में धनञ्जय माहिं अन्तर मोहिं कछू न लखात ॥ ४ ॥

धृतराष्ट्र—वत्स ! तुम्हारा क्या दोष है, भरत-कुल का ही अन्त आ गया है । हे सञ्जय ! अब मैं क्या करूँ ? मेरा तो भाग्य ही फूट

वेणी-संहार

गया । (सोचकर) तुम मेरी आज्ञा से द्रोण-नन्दन अश्वत्थामा से इस प्रकार कह दो —

पय-पान कीन्हों मातु को तुम बाँटि कै या संग ।

मैलो कियो मेरो पटम्बर बैठि याहि उल्लंग ॥

निज सुहृद-मन्त्रिन-निधन-दुख सों देत यह तव दोष ।

सुमिरि पूरव प्रीति को जिन करिय यापै रोष ॥ ४१ ॥

सञ्जय—महाराज की जो आज्ञा । (उठता है)

धृतराष्ट्र—और यह भी कह देना —

भूठी सुने जिनकी बतियाँ, गुरु नै रनभूमि मैं आयुध डारौ ।

या विधि सों पितु-घातिन ने, मिलि कीन्ह्यो घनो अपकार तुम्हारौ ।

ताके पराभव की सुधि कै, अपने भुज को बल वीर विचारौ ।

भूलि कुबैन सुयोधन के, रन में निज पौरुष को विस्तारौ ॥ ४२ ॥

सञ्जय—महाराज ! जो आज्ञा हो ।

दुर्योधन—सूत ! युद्ध-रथ सुसज्जित करके लाओ ।

सूत—महाराज की जो आज्ञा हो ।

धृतराष्ट्र—गान्धारी ! चलो यहाँ से हम लोग मदराज शल्य के शिविर में चलें । वत्स, तुम भी अपनी बात पूरी करो ।

(सबका प्रस्थान)

पाँचवाँ अङ्क समाप्त ।

षष्ठ अंक

(आसन पर बैठे हुए युधिष्ठिर, द्रौपदी, चेटी और
कंचुकी का प्रवेश)

युधिष्ठिर—(सोचकर और श्वास लेकर)

भीषम महोदधि पार कै गुरु द्रोन अनल बुझाय कै ।

रवि-तनय विषधर व्याल को हनि शल्य रनहि जुझाय के ॥

अति प्रीय साहस भीम ने सहसा प्रतिज्ञा जो करी ।

यातें हमारी प्रानधारन-आस संसय मैं परी ॥ १ ॥

द्रौपदी—(आँसू बहाती हुई) महाराज ! आप यह क्यों नहीं
कहते कि, पाञ्चाली ने ।

युधिष्ठिर—द्रौपदी ! नहीं मैंने ही । (कंचुकी की ओर देखकर)
कंचुकी !

कंचुकी—महाराज ! क्या आज्ञा है ?

युधिष्ठिर—सहदेव से कह देना कि महाक्रोधी भीमसेन की प्रचण्ड
प्रतिज्ञा-पूर्ति के भय से छिपे हुए अभिमानी दुर्योधन का पता लगाने के
लिए, वस्तुतत्त्ववेत्ता तथा उसके पदाङ्गों के यथार्थ रूप से जाननेवाले
गुप्तचर समन्त-पञ्चक के चारों ओर घूमकर उसका पता लगायें, और
स्वामिभक्त सचिवों से डौँड़ी पिटवाकर यह कह दिया जाय, “इसके

वेणी-संहार

पता लगानेवाले को धन, मान, प्रतिष्ठा इत्यादि सब, कुछ दिया जायगा ।”

छिपौ मारग जानत पंक में जे, हुकुवा सिकतामई भूमि पधारैं ।
पग घात लता-निचै पै जे लखैं, ते गुवाल निकुञ्जन मैं पगु धारैं ॥
बिल औ पद-अंक जे जानत व्याध, ते बाघन की अटवी में सिधारैं ।
पटु सिद्ध स्वरूप बनाइबे मैं, मुनि आश्रम खोजि सवै चर डारैं ॥ २ ॥

कंचुकी—महाराज की जो आज्ञा ।

युधिष्ठिर—(फिर कंचुकी को रोककर) सहदेव से यह भी कह देना—

धारि सङ्का जहाँ कोऊ एकान्त में बतराय ।
कातर विहंगम कुल जहाँ कहूँ चहचहात सुनाय ॥
अथवा बहानो कै जहाँ कोउ नींद लेत लखाय ।
पद-पदम के नृप-चिन्ह को बन दास देखैं जाय ॥ ३ ॥

कंचुकी—महाराज की जो आज्ञा (जाकर फिर हर्षपूर्वक लौटता है) महाराज ! पाञ्चालक आये हैं ।

युधिष्ठिर—अभी बुला लाओ ।

कंचुकी—(बाहर जाकर और पाञ्चालक को अपने साथ लाकर)
यहाँ महाराज बैठे हैं, आप जावें ।

पाञ्चालक—महाराज की जय हो । महाराज और महारानी को प्रिय समाचार सुनाबे आया हूँ ।

युधिष्ठिर—पाञ्चालक ! क्या उस दुरात्मा कौरवापसद का पता लग गया ?

पाञ्चालक—महाराज ! केवल पता है। नहीं प्रत्युत वह दुरात्मा स्वयं भी मिल गया, जो महाराणी के केशाम्बराकर्षण-रूपी महापातक का मुख्य हेतु था ।

युधिष्ठिर—(सहर्ष पाञ्चालक को भेंटकर) भद्र ! आपने वास्तव में बड़े ही प्रिय वचन कहे । क्या किसी ने उसको देखा भी ?

पाञ्चालक—महाराज ! यह पूछिए क्या उसे लड़ते देखा ।

द्रौपदी—(सभय) क्या मेरे प्राणनाथ से उसका युद्ध हो रहा है ?

युधिष्ठिर—(साशङ्क) क्या वास्तव में मेरे भीमसेन से युद्ध हो रहा है ?

पाञ्चालक—हाँ, महाराज ! यह ध्रुव सत्य है । क्या आपके समन्त कोई झूठ बोल सकता है ?

युधिष्ठिर—

पटुता गदा-संगर में सिगरी, रन भीम भुजाबल जानौ सदा ही ।
तबु धीर न आवत या मन कौ, घबरान की बात कछू केउ नाहीं ॥
कुरुनाथ हराइहैं याके किधौ, कै पछारिहैं सो दुर्योधन का ही ।
इमि संसय की नितै तुझ तुरङ्ग, उठ्यो ही करैं उर-सागर माहीं ॥ ४ ॥

(द्रौपदी को देखकर और उसके मुख से आँसू पोंछकर)

वेणी-संहार

अरी सुक्षत्रिये—

बन्धु गुरु नरनाहनि जूह, जुरयो हुतौ द्यूतसभा में घनेरौ ।
भावती देखत ही तिनके, पहले अपमान भयो हुते तेरौ ॥
प्रेय प्रिया अब ताके यही, कोउ दूसरो जानि परै न निबेरौ ।
कै हम प्राननि को तजिहैं, कुरुनाथ को कै जमलोक बसेरो ॥५॥

अथवा सन्देह करना व्यर्थ है ।

डरत प्रतिज्ञा-भङ्ग सो, जो वर वीर महान ।

सजिहैं तुव कच नासिहैं कै दुर्योधन प्रान ॥ ६ ॥

पाञ्चालक ! अच्छा यह तो बतलाओ कि वह दुष्ट कैसे और किस
स्थान पर मिला, और तब क्या हो रहा था ।

द्रौपदी—कहिथे, कहिये ।

पाञ्चालक—महाराज तथा महारानीजी सुनिए ! जब मद्राधिप शल्य
मार डाले गये और सहदेव ने गान्धारकुल-कलंक शकुनि को शलभ के
समान अपने कृपाणानल में भस्म कर दिया, तथा अन्य सेनानायकों के
संहार से जब संग्रामभूमि से शत्रु के योधा भाग गये एवं शत्रुसेना
के परास्त होने से जब आपकी सेना ने धृष्टद्युम्न ऐसे महापराक्रमशाली
वीर का नेतृत्व ग्रहण करके उद्धत एवं अद्वितीय पराक्रम प्रदर्शित
करके शत्रुओं को चारों ओर से घेर लिया तब कृपाचार्य, कृतवर्मा
और अश्वत्थामा भी कहीं छिप गये । उसी समय भीम की दारुण
प्रतिज्ञा का पता लगाकर वह कौरवाधम न जाने कहाँ छिप गया ।

युधिष्ठिर—तब फिर ?

द्रौपदी—आगे कहिए ।

पाञ्चालक—महाराज और महारानी ध्यान देकर सुनें । तब तो भगवान् वासुदेव के साथ भीम, अर्जुन और हम एक रथ में सवार होकर समन्त-पञ्चक के चारों ओर उस दुरात्मा को ढूँढ़ने के लिए घूमने लगे, परन्तु उसे न पाया । अन्त में मेरे जैसे तुच्छ सेवक के भाग्य-निन्दा करने पर, अर्जुन के दीर्घ निःश्वास लेने पर वर्षाकालीन रात्रियों में स्फुरण करनेवाली सौदामिनी के पिङ्गल कटाक्ष के समान कुमार भीमसेन के अपनी गदा को जगमगा देने पर, एवं भगवान् वासुदेव के विधि-विडम्बना करने पर, कोई कुमार भीमसेन का परिचित पुरुष उधर आता हुआ दिखलाई पड़ा, जिसके चरणों एवं वस्त्रों में सद्यःव्यापादित कुरंग का रुधिर लगा हुआ था । वह मांस-भार को एक ओर रख कर निकट आया । दीर्घ निःश्वास के कारण उसके मुख से स्पष्टाक्षर नहीं निकलते थे । वह बोला कि, कुमार ! इस महा-सरोवर के निकट तक दो चरणों के चिह्न ठीक-ठीक दिखलाई पड़ते हैं, उनमें से एक स्थल पर है, दूसरे का कोई पता नहीं है । इसमें आप स्वयं प्रमाण लें । तब तो फिर हम सब लोग उसी पुरुष को आगे करके उस सरोवर की ओर चल पड़े । भगवान् वासुदेव ने दुर्योधन के चरण-चिह्न को लक्षित करके कहा कि वृकोदर ! दुर्योधन जल-स्तम्भिनी विद्या को भली भाँति जानता है । अवश्य यह तुम्हारे भय से इस तड़ाग

वेणी-संहार

में छिप गया है। भगवान् श्रीकृष्ण के वचन सुनकर कुमार भीमसेन ने व्यास-सरोवर के सलिल को इस प्रकार मथ डाला कि जिससे सारे जलचर घबरा उठे। नक्र भय के मारे विचलित हो गये। जलचर पक्षी आकाश में उड़ गये। उस समय कुमार भीमसेन ने जलद-गम्भीर गर्जन करते हुए इस प्रकार कहा कि अरे ! अपने भूठे पराक्रम की डौंड़ी पीटनेवाले, द्रौपदी का केशाम्बराकर्षणरूपी महापाप करनेवाले, अभिमान-मूर्ति कौरवाधम !

जनमौं विधु के वर वंश में तूँ, अजहूँ गरुई गदा हाथ धुमावत ।
हियो फारिकै पापी दुसासन को, छाक्यो सोन-सुरा-रिपु मोहि बतावत ॥
मद-अन्ध हूँ त्यों मधु कैटभ शत्रु को, बाँ धिबो हूँ हिय मैं ठहरावत ।
मम त्रास सो युद्ध विहाय, अरे शठ, पंक सो बाहर क्यों नहि आवत ॥७॥
और भी—अरे अभिमानान्ध ! कौरवापसद !

द्रौपदी को वह क्रोध-कृसान्, रुक्यो न जरावन को कछु पाई ।
कौरववंसिन की बनितानि की, बेनी खुली सबै देती दिखाई ॥
सोनित छाक्यो दुसासन को, तुम मेरौ सक्यो पै कछू न बनाई ।
रोष कै कीन्हें कहा कुरुराज, दियौ कुसमै अभिमान गँवाई ॥८॥

द्रौपदी—नाथ ! मेरा क्रोध शान्त हो गया, यदि उनका दुर्लभ दर्शन पुनः प्राप्त हो सके ?

युधिष्ठिर—पाश्वाली ! यह अमङ्गल वचन-रचना का समय नहीं है। भद्र ! तब फिर क्या हुआ ?

पाञ्चालक—महाराज ! इसके अनन्तर ऐसा कहकर भीमसेन ने क्रोध करके उस सुविस्तृत सरोवर में उतरकर गदा और परिघ को हाथ में लेकर उसके जल को ऐसा मथ डाला, जिससे अम्भोजिनी-वन का सर्व-नाश हो गया, आघात से ग्राहगण मूर्च्छित हो गये । जलचर पक्षी, मत्स्यवृन्द धबड़ा गये और जल चक्कर खाने लगा ।

युधिष्ठिर—क्या वह इतने पर भी नहीं निकला ?

पाञ्चालक—महाराज ! निकलता क्यों नहीं ?

भीम-भुज-मंदर-विलोडित सिन्धु सौ सर त्यागि ।

प्रबल चंड प्रकोप की दरशाय सौ विष आगि ॥

आयो सुयोधन सलिल ऊपर छनक ही में धाय ।

ज्यों हलाहल उदधि-मंथन सौ परधौ दिखराय ॥ ६ ॥ •

युधिष्ठिर—वाह क्षत्रिय ! वाह !

द्रौपदी—फिर वह युद्ध के लिए सन्नद्ध हुआ या नहीं ?

पाञ्चालक—उस जलाशय से ऊपर उठकर और भयङ्कर गदा को अपने दोनों हाथों में धारण करके दुर्योधन बोला कि अरे भीम ! क्या तू मुझे भय से छिपा हुआ जानता है ? अरे मूढ़ ! पाण्डवों को यमराज का अतिथि बनाये बिना मुझे प्रकट रूप से विश्राम करने में लज्जा आती थी, इसी लिए मैं पाताल में पड़ रहा था । ऐसा कहने पर वासुदेव और अर्जुन ने उन दोनों के जल में लड़ने से रोककर स्थल

वेणी-संहार

पर लाने का प्रयत्न किया। कौरवराज गदा को रखकर पृथ्वी पर बैठ गया, और रणक्षेत्र पर उसने दृष्टिपात किया। तब तो उसने देखा कि वहाँ संख्यातीत भग्नावशेष स्यन्दनों का समूह पड़ा है। निष्प्राण कौरवों तथा असंख्य गज, बाजि एवं मानव शवों पर गृध्र, कङ्क और शृगाल भ्रष्ट रहे हैं। हमारे योधागण सिंहनाद कर रहे हैं, और उसके मित्रो एवं कौरवों में से कोई अवशेष नहीं रहा। तब तो उसने बीभत्सदर्शन संग्राम-भूमि को देखकर दीर्घ निःश्वास लिया। उस समय भीमसेन ने कहा, अरे कौरवराज ! बन्धुजन-निधन के क्रोध से इस प्रकार विपाद करना व्यर्थ है। तू इस बात से अधिक दुखी न हो कि पाण्डव समर्थ हैं और मैं अकेला हूँ; क्योंकि—

पाँचौ भाइन माहिँ तुहिँ, जासों युद्ध सुहाय।

धारि कवच तेहि सङ्ग तुम, आज लड़ौ इत आय ॥१०॥

यह सुनकर भीमसेन और अर्जुन की आँखें अश्रु-विलुलित दृष्टिपात करते हुए दुर्योधन बोला—

करन दुशासन निधन सम, तुम दोउ शत्रु समान।

प्रिय साहस तुमसो लरन, मोहिँ अभिलाख महान ॥११॥

ऐसा कहकर दोनों—भीम, दुर्योधन—उठकर खड़े हो गये। क्रोध के कारण अधिक्षेपपूर्वक परुष वचन कहकर घोर द्रुपद युद्ध में सन्नद्ध हुए। उस समय उनके युगल-बाहुदंड विचित्र रीति से गदा घुमाने के कारण देदीप्यमान हो रहे थे। थोड़ी ही देर में वे दोनों मण्डल बाँध-

कर घूमने लगे । इसके अनन्तर महाराज चक्रपाणि देवकीनन्दन ने मुझे आपके पास यह सँदेसा लेकर भेजा कि दुर्योधन के छिप जाने पर तथा भीम की प्रतिज्ञा पूर्ण न होने पर हमें बड़ा विषाद हो रहा था; परन्तु कुमार के इस दुष्ट को प्राप्त कर लेने के कारण यह पृथ्वी निष्कण्टक हो गई, यह आप भली भाँति जान लें । अब आप अपना अभ्युदयोचित मङ्गल आरम्भ कर दें, सन्देह करना व्यर्थ है ।

पुण्य सलिल भरि रत्न कुम्भ तीर्थन सैं लाई ।

नृपति राज्य अभिषेक हेतु सब धरै सजाई ॥

कै परतिज्ञा जाहि नाहि अब लैं निरवारौ ।

कृष्णा-केस-कलाप आजु सो जाय सँवारौ ॥

वह क्षत्र-विटप-छेदन कठिन, परशुराम जिमि कर गह्यो ।

तिमि विकट वृकोदर रन जुरे, विजय न कछु संसय रह्यो ॥१२॥

द्रौपदी—(सवाष्प) भगवान् त्रिभुवननाथ की व्याहृति कभी विपरीतार्थ नहीं हो सकती ।

पाञ्चालक—असुर-निकन्दन भगवान् का यह केवल आशीर्वाद ही नहीं है प्रत्युत आदेश भी है ।

युधिष्ठिर—भला भगवान् के आदेश में कौन सङ्कल्प-विकल्प कर सकता है ?

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चु की—महाराज ! क्या आशा है ?

वेणी-संहार

युधिष्ठिर—भगवान् देवकीनन्दन ने हम लोगों में बड़ा मान प्रदर्शित किया है, इसलिए प्रिय भीमसेन के विजय-मंगल-सूचक उत्सवों का आरम्भ किया जाय ।

कंचुकी—(सोत्साह घूमकर) हे कार्यकर्त्ताओ ! मय अग्रगण्य एवं अवरोध-गृह के प्रधान एवं द्वारपाल ! महाराज युधिष्ठिर ने उन्हीं अप्रमेय बलशाली मरुत्नन्दन कुमार भीमसेन के मांगलिक कृत्यों का अन्वष्टान करने के लिए अत्यन्त स्नेहादर्प हृदय से आज्ञा दी है जिन्होंने अपने बाहुबल से कौरव-कृत परिभवसागर को पार किया है, और जिन्होंने दुर्योधन के शत बन्धुओं को नष्ट किया तथा जिन्होंने नृसिंह के समान दुःशासन का वक्षःस्थल विदीर्ण किया है, और जिन्होंने दुर्योधन के जंघारूपी स्तम्भ को भङ्ग करने का निश्चय कर लिया है । (आकाश की ओर देखकर) क्या कहते हो ? क्या तुम सब से अधिक वर्तमान मांगलिक कृत्य को नहीं देखते ? वाह पुत्र ! वाह पुत्र ! बिना कहे ही हितकारिता मनोगत स्वामिभक्त का प्रकाशन करती हैं । (राजा के पास जाकर) महाराज ! वह तो पहले ही से सब हो रहा है ।

युधिष्ठिर—आर्य ! जयन्धर !

कंचुकी—महाराज आज्ञा दें ।

युधिष्ठिर—जाओ और सुखद समाचार लानेवाले पाञ्चालक को पारितोषिक देकर सन्तुष्ट करो ।

कंचुकी—महाराज की जो आज्ञा हो ।

(पाञ्चालक के साथ जाता है)

द्रौपदी—महाराज ! प्राणनाथ ने उस दुष्ट दुराचारी से यह क्यों कहा कि हम पाँचों में से जिससे चाहे उससे लड़ ले ? यदि वह दोनों माद्रि-नंदनों में से किसी से भी युद्ध-याचना करे, तब तो अनिष्ट की पूर्ण आशंका थी ।

युधिष्ठिर—पाञ्चाली ! जरासन्धधाती भीम इस विचार में थे कि वह दुर्योधन अभिमान और आयुधों के छोड़कर तपोवन के न चला जावे अथवा धृतराष्ट्र के द्वारा कहीं सन्धि की प्रार्थना न करने लगे, जिसके समस्त-बन्धु बांधव एवं आश्रित राजन्यगण मार डाले जा चुके हैं और एकादश अक्षौहिणी सेना में कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा के अतिरिक्त कोई नहीं बचा है, किसी भाई के न रहने पर उसका शरीर-मात्र ही ऐश्वर्यावशेष रह गया है । ऐसा होने पर अखिल-शत्रु-वर्ग के संहार के अनन्तर भी प्रतिज्ञा-पूर्ति एक दूर की बात हो जायगी । संग्राम के प्रतिपन्न होने पर वह पाँचों पाण्डवों में से किसी अन्य से कभी युद्ध करना स्वीकार न करेगा, इसलिए मेरा विश्वास है कि भीम ही के साथ उसका गदा-युद्ध होगा ।

क्रोध कै धुमावै रन चञ्चल प्रचण्ड गदा,

कोऊ भीमसेन के न पटतर आवै है ।

तौहूँ हस्त-लाघव प्रबल बलरामजू के,

कौरव-महीपति सकल दरसावै है ।

वेणी-संहार

अन्ध-कुल-नलिनी-विपिन-गजराज भीम,

ताकी क्यों न क्षेम आजु विधि सौं मनावै है ।

होइ है युद्ध ताहि के अवसि दुर्योधन से,

और से न कौहूँ यह मेरे मन आवै है ॥१३॥

(नेपथ्य में)

अरे ! मुझे बड़ी प्यास लगी है, कोई मुझे छाया एवं शीतल जल प्रदान करे ।

युधिष्ठिर—(सुनकर) अरे यह कौन है ? कौन है ?

कंचुकी—(तुरन्त आकर) महाराज की क्या आज्ञा है ?

युधिष्ठिर—पता लगाओ यह कौन है ।

कंचुकी—महाराज की जो आज्ञा हो (बाहर जाकर और फिर लौटकर) महाराज ! क्षुत्क्षामकण्ठ अतिथि द्वार पर आया है ।

युधिष्ठिर—उसे तुरन्त यहाँ लाओ ।

कंचुकी—जैसी महाराज की आज्ञा हो । (जाता है)

(मुनिवेषधारी चार्वाक नामक राक्षस का प्रवेश)

राक्षस—(स्वगत) अरे मैं तो चार्वाक नामक राक्षस दुर्योधन का मित्र हूँ, और पांडवों को वञ्चित करने के लिए घूम रहा हूँ । (प्रकट) मुझे बड़ी प्यास लगी है, कोई मुझे छाया और शीतल जल प्रदान करे । (राजा के पास जाता है)

(सब लोग उठकर खड़े हो जाते हैं)

युधिष्ठिर—मुनिवर ! आपको अभिवादन करता हूँ ।

राक्षस—शिष्टाचार का यह उपयुक्त अवसर नहीं है । मुझे जल दीजिए ।

युधिष्ठिर—मुनि महाराज ! यह आसन बिछा है । इस पर बैठ जाइए ।

राक्षस—(बैठकर) आप भी इस आसन को अलंकृत करें ।

युधिष्ठिर — (बैठकर) अरे कोई यहाँ है, जल लाओ ।

(भञ्जकर लिये हुए कंचुकी का प्रवेश)

कंचुकी—(पास जाकर) महाराज ! शीतल एवं सुगन्धित सलिल से परिपूर्ण यह भञ्जकर और जलपात्र रक्खा है ।

युधिष्ठिर—मुनि महाराज ! अपनी तृप्ता निवारण कीजिए ।

राक्षस—(पैर धोकर तथा आचमन लेकर सोचता हुआ) आप क्षत्रिय मालूम पड़ते हैं ।

युधिष्ठिर—आपका विचार बिल्कुल ठीक है, मैं क्षत्रिय हूँ ।

राक्षस—यदि ऐसा है, तो आप लोगों के यहाँ बन्धु-बान्धवों का निधन आये दिन संग्रामों में होता रहता है, अतः आपका कभी जल ग्रहण न करना चाहिए । तब तक इसी छाया और सरस्वती के शीतल-तरंग-मिश्रित समीरण से अपना अध्व-खेद दूर करूँ ।

द्रौपदी—बुद्धिमती ! महर्षि के ऊपर पङ्खा हाँके ।

(दासी पंखे से हवा करती है)

राक्षस—हम लोगों के साथ ऐसा सदाचार दिखलाना अनुचित है ।

वेणी-संहार

युधिष्ठिर—मुनिवर ! कहिए, आप इस प्रकार क्यों परिश्रान्त हो रहे हैं।

राक्षस—मुनिजनसुलभ कौतूहलवश, पूज्य क्षत्रियश्रेष्ठ का द्रंद्र-युद्ध देखने के लिए समन्तपञ्चक में गया था। आज मैं शारदीय भास्कर के प्रचण्ड उत्ताप से सन्तप्त होकर अर्जुन और दुर्योधन का गदा-युद्ध बिना पूरा देखे हुए ही चला आया हूँ।

(सब लोग शोक का अभिनय करते हैं)

कञ्चुकी—हे मुनि ! ऐसा नहीं, यह कहो भीम और दुर्योधन का।

राक्षस—अरे ! वृत्तान्त को बिना जाने-बूझे हुए ही तुम मुझे झूठा बनाते हो।

युधिष्ठिर—महर्षि ! कहिए, कहिए।

राक्षस—क्षत्रिक विश्राम लेकर आपके समक्ष सारा हाल कहूँगा। परन्तु इस वृद्धाधम से नहीं।

युधिष्ठिर—कहिए। अर्जुन और दुर्योधन में फिर क्या हुआ ?

राक्षस—सो तो मैंने पहले ही कहा था कि अर्जुन और दुर्योधन में गदायुद्ध आरम्भ हो गया था।

युधिष्ठिर—भीम और दुर्योधन में नहीं ?

राक्षस—वह तो हो चुका।

(युधिष्ठिर और द्रौपदी का मूर्च्छित हो जाना)

कञ्चुकी—(जल छिड़ककर) महाराज धैर्य धरिए, महारानी धैर्य धरिए।

चेटी—महारानी ! धैर्य धरिए !

(दोनों का सचेत होना)

युधिष्ठिर—हे मुनि ! क्या कहते हो, भीम और दुर्योधन का गदा-युद्ध समाप्त हो चुका ?

द्रौपदी—भगवन् ! कहिए, कहिए, क्या हुआ ।

राक्षस—कञ्चुकी ! यह दोनों कौन हैं बतलाओ ।

कञ्चुकी—ब्रह्मन् ! यह महाराज युधिष्ठिर हैं और यह पाञ्चालराज-कन्या महारानी द्रौपदी हैं ।

राक्षस—अरे मैंने यह क्या किया ?

द्रौपदी—हा नाथ भीमसेन ! (मूर्च्छित हो जाती है ।)

चेटी—महारानी ! धैर्य धरो, धैर्य धरो ।

युधिष्ठिर—(आँखों में आँसू भरकर) महाराज !

तव असमञ्जस वचन सुनि जरत हिये दुख आगि ।

जानि यथारथ मरम, सुख लहैं प्रान निज त्यागि ॥१४॥

राक्षस—(मन ही मन प्रसन्न होकर) यही तो मेरा प्रयत्न है ।

(प्रकट) यदि अवश्य ही मुझे कहना पड़ेगा तो संक्षेप में कहूँगा, क्योंकि बन्धु-नाश का विस्तारपूर्वक वर्णन अच्छा नहीं ।

युधिष्ठिर—(आँसू गिराते हुए)

संक्षेपहि विस्तार सेां, जो रुचि भावै तोहिं ।

सुनत कान दै भीम की, कथा सुनावौ मोहिं ॥१५॥

वेणी-संहार

राक्षस—सुनिए—

जा समै भीम सुयोधन मैं, गदायुद्ध अरम्भ भयो भयकारी ।

द्रौपदी—(सहसा उठकर) फिर, फिर ?

राक्षस—(स्वगत) इनकी चेतना कैसे नष्ट करूँ । (प्रकट)

जानी कहाँ ते बहि ठौर पै आपु अचानक आय गये हलधारी ।

दाँव कछू तिन दीन्ह्यौ बताय, सके तेहि सेां तेहि आर निहारी ।

लीन्ह्यौ दुसासन को बदलौ, कुरुनाथ ने आजु वृकोदरै मारी ॥१६॥

युधिष्ठिर—हा वत्स वृकोदर ! (मूर्च्छित हो जाता है)

द्रौपदी—हा नाथ भीमसेन ! हाय मेरे अनादर का प्रतिकार करने के लिए अपने प्राणों को छोड़नेवाले ! जटासुर, वक, हिडिम्ब, किर्मीर, कीचक और जरासन्ध आदि के मारनेवाले ! सौगन्धिक-सरोज को लानेवाले चाटुकार ! मुझे उत्तर क्यों नहीं देते ?

कञ्चुकी—(नयनों में जल भरकर) हा कुमार भीमसेन ! कौरव-कुल-कानन पर तुषारपात करनेवाले ! (घबड़ाकर) महाराज ! धैर्य धारण कीजिए, महारानी धैर्य धरिए । महर्षि तुम भी महाराज को धैर्य बँधाओ ।

राक्षस—(स्वगत) प्राण-परित्याग के लिए धैर्य बँधाऊँगा ? (प्रकट) अरे भीमसेन के ज्येष्ठ भ्राता ! मुहूर्त मात्र के लिए धैर्य धारण करो, अभी कुछ और कहना है ।

युधिष्ठिर—(धैर्य धरकर) महर्षि ! और क्या कहना रहा ?

राक्षस—तब तो उस क्षत्रिय के वीर-सुलभ गति प्राप्त करने पर भ्रातृवध-शोक-जनित अश्रुबिन्दुओं को पोंछकर एवं शोणितासिक्त गदा को अपने दिवंगत भाई के हाथ से छीनकर और गाण्डीव धनय को छोड़कर, सन्धि की इच्छा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा बराबर रोके जाने पर भी, तुम्हारे तृतीय भाई किरीटी ने घूमती हुई गदा के शब्द से अपनी प्रचण्ड प्रचारणा को मिलाकर कौरवेश्वर से गदा-युद्ध प्रारम्भ किया। उस समय उसकी गदाघात की अनभिज्ञता से मृत्यु की सम्भावना करके बलभद्र जी अर्जुन के पक्षपाती देवकीनन्दन को बड़े यत्न से अपने रथ में बिठलाकर द्वारका को ले गये।

युधिष्ठिर—धन्य है, अर्जुन धन्य है। गाण्डीव परित्याग करते ही तुमने वृकोदर का अनुसरण किया। अब मैं कैसे प्राण-परित्याग का महोत्सव मनाऊँगा ?

द्रौपदी—हे बन्धु-वत्सल प्राणनाथ ! गदायुद्ध में अकुशल अपने लघु बन्धु को भयंकर अराति के सन्मुख जाते हुए देखकर चुप रहना तुम्हारे लिए कदापि उचित नहीं था।

(मूर्च्छित हो जाती है)

राक्षस—इसके उपरान्त और सुनिए।

युधिष्ठिर—बस मुनि महाराज ! अब मैं सुन चुका। अब तो आगे सुनना व्यर्थ है। हाय भीम ! हाय वनवास-दुःख के साथी ! हाय लाक्षा-ग्रह के दुःखार्णव से पार करानेवाले महापोत ! हाय ! किर्मीर,

वेणी-संहार

हिडिम्बासुर, जरासन्ध को पछाड़नेवाले एकमात्र मल्ल ! हाय कीचक-
दुर्योधन द्रुमों का समूलोन्मूलन करनेवाले प्रभञ्जन ! द्यूत में मेरी
आज्ञा से दाँव में लग जानेवाले ! हाय मेरी आज्ञा के पालन करने-
वाले ! हाय कौरव-कुल-काननानल !

तजि लाज कै खेल्यो जुवा जिय खेलिकै, तौहूँ रहे नित प्रीति दृढ़ाये ।
मदमाते हजार करी बल धारि, बने तुम मो-हित दास पराये ।
तेहि से बढ़िके का कियो अपराध, हमैं जु पै ऐसे समै बिसराये ।
कोउ बन्धु न पास अनाथ भयो, तुमहूँ परलोक कौं हाय सिधाये ॥१७॥

द्रौपदी—(उठकर) हाय महाराज ! यह क्या हुआ ?

युधिष्ठिर — पाञ्चाली ! और क्या होता ?

कीचक, वक, किरमीर, हिडम्बाहि जिन लरि मार्यो ।
जिन मदान्ध मगधेश द्विरद सन्धिहि हठि फान्यो ॥
गदा परिघ सम रहे जुगल भुज जासु सुहाई ।
मर्यो प्रीय तुव, अनुज मोर पारथ गुरु भाई ॥१८॥

द्रौपदी—(आकाश की ओर देखकर) नाथ भीमसेन ! तुमने
मेरा केश-कलाप बाँधने को कहा था । वीर क्षत्रिय को अपनी प्रतिज्ञा से
इस प्रकार विमुख होना उचित नहीं । इसलिए प्राणनाथ ! उस
प्रतिज्ञा का पालन करो, मैं आपके पास आ ही रही हूँ ।

(फिर अचेत हो जाती है)

युधिष्ठिर—(आकाश की ओर देखकर) अरे माता कुन्ती ! अपने पुत्र का यह सदाचार सुनो कि मुझे इस प्रकार अकेला अनाथ एवं विलाप करता हुआ छोड़कर कहीं चला गया । अरे जरासन्ध के शत्रु अल्पवयस्क भीम में संसार ने कौनसी विपरीतता देखी अथवा मैंने ही बहुत कुछ विचित्रता देख ली थी ।

महि-मण्डल जीति कियो बस भूपनि, तौहूँ रहे तुम तात लजाई ।
तुम्हें द्यूत में दाँव लगाय दियो, रुख पै तऊ रोष की रेख न आई ।
हमरेई लिए कितने दिन हाय ! विराट के गोह रसोई बनाई ।
तुव शीघ्र विनाश के चिह्न सबै, बहु यौसनि सौं हुतैं देत दिखाई ॥१९॥
मुनि ! तुम क्या कहते हो ? क्या दुर्योधन और भीम के साथ युद्ध प्रारम्भ हुआ ?

रान्स—हाँ, यही बात है ।

युधिष्ठिर—मेरी हतभाग्यता को धिक्कार है । (आकाश की ओर देखते हुए) भगवन् सुभद्रा-बन्धु ! बलभद्र !

जाति की प्रीति गुनी मन में नहीं, क्षत्रिय-धर्म की ओर न हेरौ ।
सोच्यो नहीं अपने लघु बन्धु को, पारथ सौं वह नेह घनेरौ ।
प्रेम को बन्धन शिष्यनि मैं, बलदेव बराबर चाहिए तेरौ ।
काज भयो तुमसों यो अजोग, फिरयो निहचै हुतो भाग ही मेरो ॥२०॥
(द्रौपदी के पास जाकर) अरी पाञ्चाली ! उठो, उठो । हमारा-
तुम्हारा दुःख समान है, मूर्च्छित होकर मुझे क्यों वञ्चित कर रही हो ?

वेणी-संहार

द्रौपदी—(सचेत होकर) प्राणनाथ ! दुर्योधन के रक्ताक्त कर-कमलों से दुःशासनाकृष्ट मेरा केश-कलाप सम्हारिए । अरी बुद्धिमती ! तेरे ही सामने प्राणनाथ ने इसकी प्रतिज्ञा की थी । (कंचुकी के पास जाकर) क्या भगवान् देवकीनन्दन ने यह आज्ञा दी थी कि मेरा केश-पाश फिर से बँधाया जाय ? इसी लिए प्रसून-मालाएँ ले आओ, और मेरा कबरी-बन्ध ठीक करो । भगवान् नारायण का सन्देश कभी अन्यथा नहीं हो सकता । अथवा शोक-सन्तप्त होने के कारण मैंने न जाने क्या कह डाला ? अभी स्वर्ग गये हुए आर्यपुत्र का अनुसरण करती हूँ । (युधिष्ठिर के पास जाकर) महाराज ! मेरी चिता को प्रज्वलित कर दो, और आप भी क्षत्रिय-धर्म का पालन करते हुए स्वामी के प्राणहन्ता का सामना करें अथवा जैसा कुछ आपके मन में आवे ।

युधिष्ठिर—द्रौपदी का कहना यथार्थ है । कंचुकी ! इस तपस्विनी की चिता प्रदीप्त कर दो, जिससे इसकी व्यथा शान्त हो और मेरा सुसज्जित प्रचण्ड कामुक ले आओ । अब जो होना था, हो चुका ।

भीम सरार से छूटी हुती, रनभूमि में सोनित की पिचकारी ।
तासों रँगी वा गदा को उठाय, विहाय कै चाप धनञ्जय भारी ।
बन्धु-सनेह-निबाहन कौ अपने मन में तिन जैसियै धारी ।
चाहिए सोई हमें करिवौ, या वृथा ही भई सब जीत हमारी ॥२१॥

राक्षस—(सविष्टाद स्वगत) क्यों जाता है ? ऐसा ही होने दो ।
(प्रकट) महाराज ! शत्रु की विजय से तुम्हारा चित्त इतना खिन्न हो
रहा है तो तुम यहीं प्राण-परित्याग कर दो । वहाँ जाने से क्या लाभ ?

कंचुकी— सरोष) ब्रह्मन् ! अधिक कहना व्यर्थ है । आपका हृदय
राक्षस के हृदय के समान कठोर है ।

राक्षस—(सभय-स्वगत) अरे बड़ा कष्ट हुआ ! क्या इन्होंने
मुझे जान लिया ? (प्रकट) अरे कंचुकी ! मैं यह कहता हूँ कि अर्जुन
और दुर्योधन का गदा-युद्ध प्रारम्भ हुआ था, मैं उनके बाहुबल को भी
जानता हूँ, किन्तु दुःखित राजर्षि को यह भयङ्कर समाचार सुनाना नहीं
चाहता इसलिए ऐसा कहता हूँ ।

युधिष्ठिर—(आँसू बहाते हुए) धन्य महर्षि, धन्य ! आपका कथन
नितान्त स्नेह-युक्त है ।

कंचुकी—महाराज ! आप देव-तुल्य होकर भी एक सामान्य
मनुष्य के समान शोक-कातर होने के कारण क्षात्र-धर्म का परित्याग
कर रहे हैं ।

युधिष्ठिर—आर्य जयन्धर !

जिनके युगल भुज-दण्ड परिघ प्रचण्ड की समता करें ?

वित्तेश शक्र जलेश हूँ के बाहुबल देखत हरै ॥

भू-लुठित पारथ भीम पै निज दीठि कौ मैं डारिहौं ।

तिनके निधन सों शत्रु को किमि मुदित हाय निहारिहौं ॥२२॥

वेणी-संहार

हाय ! पांचाली ! मेरी दुर्नीति से ही तेरी ऐसी दयनीय दशा हुई ।
अग्नि प्रदीप्त हो रही है, इसलिए आओ हम लोग एक ही साथ
बन्धुजन का सम्मान करें ।

द्रौपदी—आर्य ! काष्ठ सञ्चय करो और चिता को जला दो ।
मेरा हृदय प्राणनाथ से मिलने के लिए अधीर हो रहा है । (चारों
ओर देखकर) अरे कोई महाराज की आज्ञा का पालन नहीं करता !
हाय प्राणनाथ ! आज तुम्हारे बिना यह परिजन महाराज का अपमान
कर रहे हैं ।

राक्षस—भरत-कुलांगनाओं को इसी प्रकार पति का अन्गमन
करना उचित है ।

युधिष्ठिर—महर्षि ! इस समय तो कोई भी हमारी बात नहीं सुनता,
इसलिए आप ही काष्ठ-सञ्चय करने की कृपा करें ।

राक्षस—यह तो मुनिजनाचार के विरुद्ध है । (स्वगत) मेरा
अभिलाष पूर्ण हो गया । जब तक यह मुझे जानने न पावें तब
तक अग्नि प्रदीप्त कर दूँ । (प्रकट) महाराज ! हम यहाँ नहीं
ठहर सकते ।

(प्रस्थान)

युधिष्ठिर—पांचाली ! मेरे वचन कोई नहीं सुनता । इसलिए मैं
स्वयं ही काष्ठ-सञ्चय करके चिता को प्रदीप्त किये देता हूँ ।

द्रौपदी—महाराज ! शीघ्रता कीजिए, शीघ्रता कीजिए ।

(नेपथ्य में कोलाहल)

द्रौपदी—(भय के साथ सुनकर) महाराज ! किसी पौरुषाभिमानी की विषम शङ्ख-ध्वनि कर्णगोचर हो रही है । इससे अनुमान होता है कि अभी हमें कोई और भी अनिष्ट-संवाद सुनना है, इसलिए अब विलम्ब न कीजिए ।

युधिष्ठिर—कोई विलम्ब नहीं है, उठो । (सब चलते हैं) अरी पांचाली ! अपनी माताजी को और सत्नीजनों को कुछ सन्देश-देकर परिजनों को लौटा दो ।

द्रौपदी—महाराज ! माताजी को सन्देश भेजती हूँ कि वक्, हिडिम्ब, किर्मीर, जटासुर, जरासन्ध आदिकों को मल्ल-युद्ध में पछाड़ने-वाला तुम्हारा मध्यम पुत्र मुझ मन्दभागिनी का पक्षपात करने के कारण परलोक पधारा ।

युधिष्ठिर—अरी बुद्धिमतिके ! माताजी से मेरा भी यह सन्देश कह देना—

लागत ही लखा-गेह मैं आगि, दियो जिन साहस आपु दिखाई ।

पुत्रन साथ तुम्हें जननी, बल सों निज बाहु के लीन्हो बचाई ॥

तासु तिहारे पियारे तनय की, दसा विधि वाम नै जैसी कराई ।

मो सम पापिहि छाँड़ि न ताहि, सबै कोऊ मातुहि और सुनाई ॥२३॥

आर्य जयन्धर ! तुम भी सहदेव के पास जाकर कह देना कि, पाण्डव-वंश-बृहस्पति, लघु बन्धु माद्रि-नन्दन, कुरु-कुल-कमलकर-दावा-

वेणी-संहार

नल युधिष्ठिर इस समय परलोक-यात्रा कर रहा है। और आप लोग उनके लघु बन्धु हैं, अद्यावधि सदा आदेशानुवर्ती, सुख-दुःख-भागी एवं आशीर्वाद के पात्र रहे हैं। आप लोगों से गाढ़ालिङ्गन करके तथा मस्तक सूँघकर प्रार्थना करता हूँ—

हो लघु बंधु हमारे लला, सम शास्त्र के जानन में चित दीजियौ।
ज्ञानी हो आपु बृहस्पति लौं, सहजै ही कृपा करिके सुनि लीजियौ।
हौं कर जोरि निहोरि कहौं, यह दीलौ सनेह को बन्धन कीजियौ।
मौ पै मया करिके पुरिखानि, दुअौ मिलिकै जल-अञ्जलि दीजियौ ॥२४॥

अरे बाल्यकाल से मेरे द्वारा संवर्धित किये हुए, स्वाभिमान को धारण करनेवाले, विपत्ति में भी विचलित न होनेवाले, मेरे भ्राता नकुल से कह देना कि मेरी आज्ञा का पालन करें और मेरा अनुसरण करें। उन्हें यह भी जता देना—

श्रुति-बुद्धि-विलास सां बन्धुनि सङ्ग, कबौं हमरी सुधि भूलि न लीजियौ।
अखियानि के आँसुन सां पितु को, तुम पिंडनि दान यथासमै दीजियौ।
रहियो कुल में जदुबंसिन के, निर्वाह सुयोधन के गृह कीजियौ।
अथवा वनमार्हि दुवौ रहि साधहि, आपने प्राननि रत्न कीजियौ ॥२५॥

जयन्धर ! तुम जाओ और तुम्हें हमारे शरीर की शपथ है कि तुम यथासमय इस सन्देश को अवश्य पहुँचा देना।

द्रौपदी—अरी बुद्धिमतिके ! मेरी ओर से प्रिय सखी सुभद्रा से कह देना कि वधू उत्तरा के गर्भ-धारण का यह चतुर्थ मास है इसलिए

इस कुलाङ्कुर की भली भाँति रक्षा की जाय । कदाचित् इसी से गो-लोकवासी श्वशुरकुल को और हम लोगों को जल-दान करनेवाला उत्पन्न हो ।

युधिष्ठिर - (नेत्रों में जल भरकर) अरे बड़ा कष्ट हुआ !

निज साखनि के अवरोधनि सों, वसुधा पै निकुञ्ज बनावनवारौ ।
दिक्भूषण होय के धनौ लै तनो, जो रह्यो अति ही दृढ़ मूल निवारौ ।
विधि वाम ने यों निरदै बनिकै, तहि पादप को हहा या विधि जारौ ।
अति सूक्ष्म तासु के अङ्कुर में, अभिलाप करैं जन आश्रयवारौ ॥२६॥

द्रौपदी—मैं अपने निश्चय की पूर्ति करती हूँ । (कञ्चुकी को देखकर) मेरे शरीर की शपथ सुनकर भी तुम नहीं जाते ।

कञ्चुकी—(आक्रोश करके) हा देव पाण्डु ! आपके पुत्र अजात-शत्रु, भीमार्जुन, नकुल, सहदेव आदिकों का यह दारुण परिणाम ! हा ! देवि कुन्ती ! भोजराज के भवन की अधिष्ठात्री देवी,—

तुव भ्रात-तनै वह अग्रज कान्ह कौ, प्यारे धनञ्जय वीर को सारौ ।
गुरु भीम को कौरव-वंश-सरोज-बनै जिननै गज लौं मथि डारौ ॥
मदपान सों ह्वै उन्मत्त महा, हल-मूसल-आयुध धारनवारौ ।
जननी हुती शीतल जासों पुरी, सुत कानन को तुम्हरो तिन जारौ ॥२७॥

(इस प्रकार विलाप करते हुए निकलता है)

युधिष्ठिर—जयन्धर ! जयन्धर !!

कञ्चुकी (आकर) महाराज, क्या आज्ञा है ?

वेणी-संहार

युधिष्ठिर—यह कहना चाहता हूँ, परन्तु हम लोगों के ऐसे भाग्य कहीं हैं कि, यदि कदाचित् अर्जुन जीत ही जायँ तो उनसे मेरी ओर से यह कह देना—

निहचै बलदेव वृकोदर-मीचु को, कारन आपु बन्यौ उतै आई ।
वह तौहूँ तुम्हारे अहेतुक मीत, लगै मधुसूदन को बड़ो भाई ॥
जनि कोपियौ तापै लला कबहूँ, सकियो अपने जु पै प्रान बचाई ।
करियौ नहीं क्रूरता छत्रिन ज्यौं, बरु कानन में बमियौ तुम जाई ॥२८॥

कञ्चुकी—महाराज की जैसी आज्ञा हो । (प्रस्थान)

युधिष्ठिर—(अग्नि को देखकर सहर्ष) पांचाली ! यह हुताशन शिखारूपी हाथों से हम ऐसे दुःखितों को बुला रहा है । मैं भी इसकी धधकती हुई ज्वाला में अपना प्राणान्त किये देता हूँ ।

द्रौपदी—मेरी इस अन्तिम प्रार्थना को स्वीकार करके महाराज प्रसन्न हों, प्रसन्न हों । मैं भी आपसे पहले अग्नि-प्रवेश करती हूँ ।

युधिष्ठिर—यदि ऐसा ही है, तो आओ हम-तुम साथ ही साथ अग्नि-प्रवेश करें ।

चेटी—हाय भगवन् ! लोकपाल ! रक्षा करो, रक्षा करो । यह सोम-वंश-सम्भव राजर्षि राजसूय-यज्ञ में अग्नि को प्रसन्न करनेवाले, खाण्डव-वन को दहन करनेवाले किरीटी के ज्येष्ठ भ्राता, सुगृहीतनामधेय महाराज युधिष्ठिर और यह यज्ञाग्नि-सम्भवा पांचाल-राज-तनया यज्ञसेनी हैं । ये दोनों ही निष्करुण कालाग्नि में प्रवेश करके

अपना प्राणोत्सर्ग कर रहे हैं। इसी लिए इनकी रक्षा करो, रक्षा करो। अरे ! कोई भी इनकी रक्षा नहीं करता। (उनके सामने गिरकर) महाराज और महारानी न जाने यह क्या कर रहे हैं।

युधिष्ठिर—अरी बुद्धिमतिके ! जो स्नेहमय प्रिय अनुज के विरह में करना चाहिए वही कर रहा हूँ। उठो उठो, जल लाओ।

चेटी—महाराज की जो आज्ञा। (जाती है और फिर लौटती है)

युधिष्ठिर—पांचाली ! तुम भी अपने पक्षपाती वृकोदर एवं प्रियवर धनञ्जय को जल-दान दो।

द्रौपदी—महाराज ! आप ऐसा ही करें। मैं फिर अग्नि में प्रवेश करूँगी।

युधिष्ठिर—लोक-रीति की अवहेलना न करना। भद्रे ! जल ले आओ।

(चेटी जल लाती है)

युधिष्ठिर—(पैर धोकर और आचमन करके) यह सलिलाञ्जलि गङ्गा-नन्दन भीष्म के लिए, यह प्रपितामह शान्तनु के लिए, यह पितामह विचित्रवीर्य के लिए, (नेत्रों में जल भरकर) पूज्यपाद पिता अब आपका अवसर आया। स्वर्गस्थ सुगृहीतनाम पाण्डु के लिए यह जलाञ्जलि—

दुर्लभ है है आजु सों दियो उदक मम हाथ।

पान तात याको करौ मात्रि मतु के साथ॥२९॥

वेणी-संहार

यह जल-अञ्जलि जलज नील, लोचन को दीन्ह्यो ।

भीम धनञ्जय हेतु भाग यामैं नहिं लीन्ह्यो ॥

विरमो छिन भरि लाल तृपाहूँ को दुख पाई ।

पान करन तुव सङ्ग अबै आवत मैं धाई ॥३०॥

अथवा क्या मैं मरकर भी सुक्षत्रियों के समान वीर गति को प्राप्त करनेवाले भीमसेन के दर्शन नहीं कर सकता । वत्स भीमसेन !

मातु के दूध पियो पहिले, तुम ताके अनन्तर ही पियो आई ।

मेरियै जूठन खाइबे में, लला प्रीति की रीति रही सरसाई ॥

मेध की सोमलता रसपान में, वैसियै रीति सदा दरसाई ।

या जल-अञ्जलि-पान के हेतु, करा तुम क्यों इती आतुरताई ॥३१॥

पाञ्चाली ! तुम भी जलाञ्जलि दो । (दासी का जल लाना)

द्रौपदी—(आगे बढ़कर और जलाञ्जलि भरकर) महाराज !

किसको जल दूँ ?

युधिष्ठिर—

सहसा जो सुरपुर गयो तेहि जल दीजै आय ।

गान्धारी सँग मातु कहूँ, रोदन सखी बनाय ॥३२॥

द्रौपदी—प्राणनाथ भीमसेन ! दिवङ्गत आपको यह परिजनोपनीत पादोदक प्राप्त हो ।

युधिष्ठिर -- अरे अर्जुन-ज्येष्ठ !

परतिज्ञा निज तात नहिं पूरी करि पाये ।

महाबाहु यहि बीच आपु सुर-सदन सिधाये ॥

अब लौं याही लागि बँधी बेनी नहिं जाकी ।

देत प्रिया जल-दान लेहु यह अञ्जलि ताकी ॥३३॥

द्रौपदी—उठिए महाराज ! तुम्हारे भाता दूर जा रहे हैं ।

युधिष्ठिर—(दक्षिण विलोचन का स्फुरण बतलाकर) पाञ्चाली ! शकुनों से सूचित होता है, कि वृकोदर मारा नहीं गया ।

द्रौपदी—शकुन सत्य हो महाराज !

(नेपथ्य में महान् कोलाहल)

(घबराये हुए कञ्चुकी का प्रवेश)

महाराज ! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए । यह दुरात्मा, कौरवाधम, रक्ताक्त वस्त्र पहने हुए रुधिररञ्जित गदा के हाथ में लिये हुए प्रत्यक्ष दण्डधारी यमराज की विडम्बना करता हुआ, महाराणी पाञ्चाल-राज-तनया के इधर-उधर ढूँढ़ता हुआ इसी ओर आ रहा है । इससे महाराज हमारी रक्षा कीजिए ।

युधिष्ठिर—हा दुर्दैव ! तेरा निर्णय हो गया । हा, गाण्डीवधारी !

(मूर्च्छित हो जाता है)

द्रौपदी—हाय आर्यपुत्र ! मुझे स्वयंवर में संवरण करनेवाले धनञ्जय वीर, प्रिय भाता वृकोदर का तो अनुसरण कर रहे हो; परन्तु मुझे और महाराज को तुम इस प्रकार भुलाये देते हो ।

(मूर्च्छित होती है)

युधिष्ठिर—हाय सव्यसाची ! हाय धूर्जटी को मल्लयुद्ध से प्रसन्न करनेवाले हा ! निवातकवचों को मारकर अमरपुरी को अकण्टक करने-वाले, हा ! बदरिकाश्रम में तपस्या करनेवाले अद्वितीय तपस्वी, हा ! द्रोणाचार्य के प्रिय शिष्य, हा ! अस्त्र-विद्या-बल से भीष्म पितामह को सन्तुष्ट करनेवाले, हा ! कर्ण-कुल-कमलिनी-तुषार, हा ! गन्धर्व-निर्वासित दुर्योधन को छुड़ानेवाले, हा ! पाण्डव-वंश बन जारा हंस—

राखती तोपै सनेह घनो, बिन वा जननी कहँ सीस नवाये ।

भो सम जेठे सहोदर सों, कछु भाषे बिना अरु कण्ठ लगाये ।

देखे बिना वा स्वयंवर की वधू, दीर्घ प्रवास के साज सजाये ।

जात कहाँ है चले वर बन्धु, हमैं सबको सहसा बिसराये ॥३४॥

(मूर्छित होता है)

कञ्चुकी—हाय ! बड़ा कष्ट हुआ । अब तो यह दुरात्मा कौरवापसद स्वच्छन्द गति से इसी ओर आ रहा है । कालोचित प्रतिकार यही है कि श्रद्धेया पाञ्चाली को चिता के निकट लिये चलता हूँ । (दासी की ओर) अरे भद्रे ! तुम भी महारानी के भ्राता धृष्टद्युम्न और नकुल, सहदेव से कह देना कि भीमार्जुन के अस्त हो जाने पर, महाराज की, ऐसी अवस्था प्राप्त होने से किससे रक्षा की आशा की जाय ।

(नेपथ्य में कोलाहल)

अरे ! समन्तपञ्चक में घूमनेवाले रक्तासव-पान में उन्मत्त यक्ष, राक्षस, पिशाच, वैताल, भूत, कङ्क, गृध्र, जम्बुक, वायस,

प्रभृति कापुरुषो ! हमारे दर्शन से भयभीत मत हो । यह बतलाओ पाञ्चाली कहाँ है ।

जाहि बिठावन को निज जङ्घ पै, आपनो हाथ सुयोधन फेरो ।
राजसभा मँहँ जा समुहे, वर अम्बर खँचो गयो जेहि केरो ।
बेनी गई खुलि जाकी जबै, वा दुसासन ने पट खँचि दरेरो ।
कौन प्रदेश मैं भूपति की, तनया द्रुपदी सो करै निज डेरो ॥३५॥

कञ्चुकी—हाय ! यज्ञाग्निसम्भवा देवी ! यह कुल-कलङ्क तुम्हारा अपमान कर रहा है ।

युधिष्ठिर—(सहसा उठकर) पाञ्चाली ! भयभीत मत होना । अरे, कोई यहाँ है ? बाणपूर्ण निषंग के सहित मेरा कामुक तो ले आओ । अरे दुरात्मा दुर्योधन इधर आ, अभी बाणधारा की वृष्टि से तेरा गदा-कौशल-सम्भूत बाहु-दर्प दूर करता हूँ । अरे कुरु-कुलांगार—

देखे बिना अपने लघु बन्धु को, जो जरासन्ध को जीतनहारो ।
कोपि किरात कलेवर को धरे, सङ्कर को जिनने मद भारो ॥
देह न धारि सकौं तुम्हारे सम, पाहन सो नहीं हीय हमारो ।
बानन की वर्षा करिके, छन माहिं हरीं शठ प्रान तुम्हारो ॥३६॥
(रक्तरञ्जित गात्र, गदापाणि, रौद्रवेष भीमसेन का प्रवेश)

भीमसेन—(उद्धततापूर्वक घूमते हुए) अरे समन्तपञ्चक के चारों ओर घूमनेवाले सैनिको ! यह कौनसी बात है कि—

वेणी-संहार

हैं हीं नहिं राकस पिशाच वैताल भूत,

रिपु के रुधिर अङ्ग-अङ्गनि लगायो हैं ।

हैं तो क्रुद्ध क्षत्री कीन्हें प्रबल प्रतिज्ञा हुती,

ताही के अगाध अम्बुरासि पैरि आयो हैं ।

हेरे अवसेख राजवंसज सुनत क्यों न,

समर-अनल-ज्वाल अरिन जरायो हैं ।

त्रास मानि काहे लुकौ वाजि गजराज ओर,

मारि जिनको या रन-खेत में गिरायो हैं ॥३७॥

आय लोग बतलावें कि पाञ्चाली कहाँ है ।

द्रौपदी—(सचेत होकर) महाराज ! मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए ।

कञ्चुकी—देवी ! पाण्डुवधू ! उठो, उठो, शीघ्रतापूर्वक चिता में प्रवेश करो । यही तुम्हारे लिए कल्याणकर है ।

द्रौपदी—(सहसा उठकर) अरे क्या ! मैं अभी चिता के निकट नहीं पहुँची ?

युधिष्ठिर—अरे कोई यहाँ है ! मेरा तूणीर और शरासन ले आओ । (पीछे देखकर) अरे क्या कोई परिजन नहीं सुनता, तो बाहु-युद्ध ही । इस दुरात्मा को पकड़कर अग्नि में डाले देता हूँ (परिकर बाँधता है) ।

कञ्चुकी—देवी ! पाण्डुवधू ! अब इस समय दुःशासनाकृष्ट नयन-पथावरोधी केश-कलाप को बाँध लो, क्योंकि अब प्रतीकार की आशा भी अस्त हो गई । शीघ्र ही चिता के पास चली जाओ ।

युधिष्ठिर—द्रौपदी ! बिना इस दुष्ट दुर्योधन के मरे वेणी कदापि नहीं बाँधना ।

भीम—मेरे जीते जी दुःशासनाकृष्ट वेणी को अपने हाथ से कदापि न बाँधना ।

(द्रौपदी भयभीत होकर पीछे हटती है)

भीमसेन—अरे भीरु ! ठहरो, ठहरो; अब कहाँ जाती हो ?

(यह कहकर केश पकड़ना चाहता है)

युधिष्ठिर—(बलपूर्वक भीम को पकड़कर) अरे भीमार्जुन का शत्रु दुरात्मा दुर्योधन ! अब कहाँ जा रहा है ?

निज बालपन तैं किये तैंने शठ अमित अपकार ।

करि बाहुबल को दरप कीन्हो मम अनुज संहार ॥

इन परिघ-भुज-पञ्जर प्रबल में अब फस्यौ है आय ।

पापी अरे पग एकहू जीवत सकै नहिं जाय ॥३८॥

भीमसेन—(सविस्मय) आर्य महाराज ! अजातशत्रु ! भीमार्जुन-ज्येष्ठ ! आप दुर्योधन की आशंका से क्रोध करके मेरा क्यों निर्दय आलिङ्गन कर रहे हैं ? जैसा आप कहते हैं वैसा नहीं है ।

बेसी-संहार

कञ्चुकी—(देखकर सहर्ष) महाराज ! आपकी जय हो, यह तो निश्चय ही आयुष्मान् भीमसेन हैं, दुर्योधन के रक्त से इनका सारा शरीर ओर वस्त्र रञ्जित है, इसलिए सहसा इनको पहचानना कठिन है । अब सन्देह करना व्यर्थ है ।

चेटी—(द्रौपदी को भेंटकर) महारानी ! धैर्य धरो, यह तो आपके प्राणवल्लभ अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करके आपकी बेसी बाँधने के लिए ही आपको ढूँढ़ रहे हैं ।

द्रौपदी—अरी ! मुझे भूठी बातों में क्यों बहला रही हो !

युधिष्ठिर—जयन्धर ! क्या यह वास्तव में अर्जुन-भीम का शत्रु दुष्ट दुर्योधन नहीं है ?

भीमसेन—महाराज ! अजातशत्रु ! भीमार्जुन-ज्येष्ठ ! क्या अब भी कहीं दुर्योधन है ? मैंने तो उस दुष्ट का—

धरनो पर ताके सरीरहि डारिकै, सेनित-चन्दन गात लगाय कै ।
वसुधा या रमाँ सँग दीन्ही तुम्हैं, रहे सीमा पयोनिधि जाकी बनाय कै ।
कुरुवंस के वीरन मन्त्रिन-मित्रन, युद्ध की घोर दवाग्नि जराय कै ।
एक नाम ही बाँकाँ रह्यो अवशेष, कोऊ नहिँ दीठि परै अब आयकै ॥३९॥

(युधिष्ठिर भीम को छोड़कर और देखते हुए आँसू पोंछते हैं)

भीमसेन —(पैरों पर गिरकर) आर्य की जय हो ।

युधिष्ठिर—घत्स ! बिलोचनों के जल-पूर्ण होने से तुम्हारे चन्द्रमुख को मैं नहीं देख सकता । कहिए, किरौटी और आप जीवित तो हैं ?

भीम—समस्त अराति-चक्र का संहार करनेवाले महाराज के जीवित रहने से भीम और अर्जुन भी जीवित हैं ।

युधिष्ठिर - (सस्नेह गाढ़ालिङ्गन करके)

श्रवण-सुखद रिपु-निधन किन बरनहुं बार हजार ।

साँच हियो प्रिय बन्धु हौ, बकाह बिनासनहार ॥

भीम—आर्य ! मैं वही हूँ ।

युधिष्ठिर—

जरासन्ध-उर-सरसि के शोनित-तोय मँभार ।

तटाघात हित मकर लौं क्रीड़ा करौ अपार ॥४०॥

भीम—आर्य ! ऐसा ही है । किन्तु मुझे थोड़ी देर के लिए छोड़ दीजिए ।

युधिष्ठिर—क्या और कुछ अवशेष है ?

भीमसेन—आर्य ! अभी बहुत कुछ अवशेष है । अभी दुर्योधन और दुःशासन के रक्त से रञ्जित इन्हीं हाथों से दुःशासनाकृष्ट पाञ्चाली की वेणी बाँधनी है ।

युधिष्ठिर—आप अभी जाइए, जिससे वह तपस्विनी “वेणी-संहार” का सुख अनुभव कर ले ।

भीमसेन—(द्रौपदी के पास जाकर) पाञ्चाली ! वैरि-वंश-विध्वंसन से आपकी जय हो, आपका सौभाग्य-सूर्य उदय है । रक्त-रञ्जित मुझे देखकर मत डरो । देखो—

वेणी-संहार

भूप-सभा में दुसासन नीच, गह्वो कच-चीरहि रावरो धाई ।
सोनित ताको घनो करि पान, बच्यो तेहिं सों दोउ हाथ रँगई ॥
सो कुरुनायक केरन में, गदाघात सो जाँघनि तोरि गिराई ।
गात रँग्यो तिनसो हे प्रिये, अपमानज आगि को देहु बुझाई ॥४१॥
अरी बुद्धिमतिके ! वह भानुमती कहाँ है, पाण्डव-रमणी को अब न
हँसेगी ? अरी यज्ञामिसम्भवा पाञ्चाली !

द्रौपदी—प्राणनाथ ! आज्ञा कीजिए ।

भीमसेन—आपको मेरी प्रतिज्ञा का स्मरण है ?

(“चञ्चल वा भुजदण्ड सों” इत्यादि पढ़ता है)

द्रौपदी—प्राणनाथ ! केवल स्मरण ही नहीं है किन्तु प्राणदान के
प्रसाद से उसका अनुभव भी कर रही हूँ ।

भीमसेन—(चेटी को फटकारकर) कौरव-कुल-कालरात्रि, दुःशा-
सनाकृष्ट यह वेणी अब बाँधी जाय ।

द्रौपदी—प्राणनाथ ! मैं तो वेणी बाँधना भूल गई, आपके प्रसाद
से आज फिर से सीखूँगी ।

(भीमसेन का वेणी बाँधना)

(नेत्रस्थ में)

महासमरामि में दग्धशेष राजकुल का कल्याण हो ।

छोरन सों जाके भुजबल अभिमानी देव,

पाण्डु-कुरु-वीरन सों वसुधा विहीनी है ।

दिसि-दिसि सब अवनीसन की रानिन में,
 व्यालिनी सी बेनी अपनी हूँ खोलि दीन्ही है ।
 कुपित कृतान्त के सखा सो द्रौपदी के केस,
 जिन अरिकुल-धूमकेतु-छवि छीनी है ।
 ताहि बाँध दीन्ह्यो मिटै सङ्कट प्रजा के आजु,
 राजवंस वृद्धि नितै होय रस भीनी है ॥४२॥

युधिष्ठिर—देवी ! नभस्थलसंचारी सिद्धजन तुम्हारे बेणी-बन्धन
 का अभिनन्दन करते हैं ।

(कृष्ण और अर्जुन का प्रवेश)

कृष्ण—(युधिष्ठिर के पास जाकर) समस्त अरातिचक्र का
 निधन करनवाले, सबन्धु पाण्डव-कुल-मयङ्क महाराज युधिष्ठिर
 की जय हो ।

अर्जुन—आर्य की जय हो ।

युधिष्ठिर—(देखकर) अरे क्या भगवान् वासुदेव और किरीटी
 आ गये ? भगवान् वासुदेव ! आपको प्रणाम है । (किरीटी की ओर
 देखकर) वत्स ! आओ मुझे भेंटो । (अर्जुन प्रणाम करता है ।) फिर
 (कृष्ण से) देव ! उसकी विजय क्यों न हो, जिसका मङ्गल भगवान्
 पुण्डरीकाक्ष स्वयं करते हैं ।

महदादि कारण प्रकृति से विद्मन्भव भाव अनूप को ।

उत्पत्ति पालन प्रलय हित धरि बह्म हरि शिव रूप को ॥

वेणी-संहार

है अजर अमर अविनश्य-तम नित ही जगत के दुख हरो ।

देखैं तुम्हें निज सामने कल्याण अब मेरे करौ ॥४३॥

(अर्जुन को भेंटकर) वत्स ! मुझे भेंटो ।

कृष्ण—महाराज सत्यवादी, अजातशत्रु !

बल्मीकि सत्यवती-तनय मुनिवर्य श्रीभृगुनन्द ।

धृष्टद्युम्न माद्रीसुवन सँग अखिल सेनावृन्द ॥

यदु मत्स्य मागध नृपति निज-निज कन्ध कलसनि धारि ।

खड़े तव अभिषेक हित भरि तीर्थ के वर वारि ॥४४॥

जब मैंने सुना कि चार्वाक नामी राज्ञस ने आपके चित्त को ध्रुम में डाल दिया है, तब मैं अर्जुन को लेकर शीघ्र ही यहाँ आया ।

युधिष्ठिर—क्या चार्वाक ने हमें धोखा दिया था ?

भीमसेन —(सरोज) वह कौरवराज का मित्र राज्ञस कहाँ है, जिसने आर्य के चित्त को इस प्रकार विभ्रम में डाल दिया था ?

वासुदेव—उस दुरात्मा को पकड़कर कुमार नकुल ने मार डाला । कहिए महाराज, अब और क्या आपका कल्याण किया जाय ।

युधिष्ठिर—भगवान् पुण्डरीकाक्ष ! आपने प्रसन्न होकर सब कुल दिया है । साधारण बुद्धि होने के कारण मैं इसी से सन्तुष्ट हूँ, इससे अधिक मैं कुल नहीं माँग सकता । महाराज, देखिए

क्रोध कै सारो हनो रिपुवंश, बचे हम पाँच बिना क्षत खाये ।

मो दुर्नीति-पराभव-सिन्धु सों, द्रौपदी को तुम पार लगाये ॥

आप ही हैं पुरुषोत्तम देव, करौ बतियाँ हमसें चित लाये ।
चाहिए और कहा हमको, अब नाथ करो सबको मन भाये ॥४५॥
फिर भी यदि भगवान् अधिक प्रसन्न हैं तो यह भी माँगता हूँ—
हूँ कै रोग-दोष-दुख-दारिद्र्य-विहीन प्रजा,

पूरी आयु पावैं धन आनंद मनाय कै ।

जन-मन-रञ्जन अखिल दुख भञ्जन जे,

राखैं पुरुषोत्तम में निज रति लाय कै ।

चाहै वै प्रजा के अनुराग भारती में करैं,

पण्डितनि राखैं निज बन्धु सो बनाय कै ।

सुकृती सदा ही रहै भूपति वसुन्धरा के,

भोग सिन्धु मेखला मही को राज पाय कै ॥४६॥

* और भी—

नरनाह वसुन्धरा पालैं सदा, मघवा जलधार मुदा बरसावैं ।

हरियारो पटम्बर भू पै बिछाय, हरे-भरे खेत सदा लहरावैं ॥

सुर के रिपु श्री व्रजनायक मैं, सिगरे जन आपनी भक्ति दढ़ावैं ।

मख होत रहैं जग में नितही, सुरवृन्द अनन्द से हव्य को खावैं ॥४७॥

वासुदेव—एवमस्तु ।

(सबका प्रस्थान)

पष्ठ अङ्क समाप्त

परशिष्ट १

छन्द-परिचय

साहित्य के आचार्यों ने यद्यपि काव्य की परिभाषा करते समय उसको छन्दबद्धता स्वीकार नहीं की है, तथापि न जाने क्यों संस्कृत और हिन्दी साहित्य का अधिकांश काव्य छन्दबद्ध ही है। संस्कृत में दो-चार इने-गिने काव्य (जैसे—कादम्बरी, दशकुमार, हर्षचरित्र ही) छन्दबद्ध नहीं हैं, और प्रायः सभी काव्य छन्दबद्ध हैं। हिन्दी साहित्य में अद्यावधि कोई भी मौलिक काव्य गद्य में नहीं है। हाँ पद्य-काव्य, चाहे वह खड़ी बोली के हो या ब्रज भाषा के, अवश्य उपलब्ध हैं। इसी लिए अन्ततोगत्वा छन्दों पर विचार करना आवश्यक प्रतीत हुआ। इस नाटक में हमने प्रायः ९ प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। छात्र इनका वर्णन पढ़कर इनके प्रभेदों की पहचान कर लें।

१—सवैया—

यह वास्तव में ब्रजभाषा का पेटेंट छन्द है। इसकी गणना वर्णिक वृत्तों के अन्तर्गत है। साहित्याचार्य बाबू जगन्नाथप्रसाद “भानु” ने सवैया के निम्नलिखित १२ भेद इस प्रकार बतलाये हैं।

१ मदिरा (भ भ भ भ भ भ ग)।

२ चकोर (भ भ भ भ भ भ ग ल)।

- ३ मत्तगयंद (भ भ भ भ भ भ भ ग ग)
 ४ सुमुखी (ज ज ज ज ज ज ज ल ग)
 ५ किरीट (भ भ भ भ भ भ भ भ)
 ६ मुक्तहरा (ज ज ज ज ज ज ज ज)
 ७ दुर्मिल (स स स स स स स स)
 ८ वाम (ज ज ज ज ज ज ज य)
 ९ आभार (त त त त त त त त)
 १० अरसात (भ भ भ भ भ भ भ र)
 ११ सुन्दरी (स स स स स स स स ग)
 १२ सुख (स स स स स स स स ल ल)

इन वृत्तों में मत्तगयन्द, मुक्तहरा और दुर्मिल का ही अधिक प्रयोग होता है, शेष छन्द उदाहरण मात्र के लिए हैं।

२—घनाक्षरी—

छब्बीस वर्ण से अधिक वर्णवाले वृत्त को दण्डक कहते हैं। यों तो इसके अशोक, पुष्पमञ्जरी, अनङ्गशेखर, मनहर, रूप घनाक्षरी, जल-हरण, कृपाण, और विजया इत्यादि बहुत से भेद होते हैं; परन्तु हमने इस नाटक में बहुधा घनाक्षरी का ही प्रयोग किया है। इसमें ३१ अक्षर होते हैं और १५-१६ पर यति होती है।

३—रोला—

इसमें २४ मात्राएँ होती हैं और ११-१३ पर यति होती है।

वेणी-सहार

४—रूपमाला—

इसमें २४ मात्राएँ होती हैं और १४-१० पर यति होती है। अन्त में गुरु और लघु होता है। इसे रामगीतिका, मदन और काव्य छन्द भी कहते हैं।

५—हरिगीतिका—

इसमें २८ मात्राएँ होती हैं और १६-१२ पर यति होती है अन्त में लघु-गुरु होता है। इसकी ५ व १२ व १६ व २६वीं मात्राएँ सदा लघु होती हैं।

६—सार—

यह भी २८ मात्रा का छन्द होता है अन्त में “कर्ण” दो गुरु होते हैं। इसे नरेन्द्र और ललितपद भी कहते हैं।

७—कुण्डलिया—

इसमें एक सौ चवालीस मात्राएँ होती हैं और ६ चरण होते हैं, प्रथम दो चरण दोहे के होते हैं और अवशेष चरण रोले के होते हैं। दोहे के द्वितीय चरण का अर्द्धभाग रोले के प्रथम चरण के आदि-भाग से कुण्डलित होता है।

८—छप्पय—

इसमें भी ६ चरण होते हैं। आदि के चार चरण रोले के होते हैं और अन्त के दो चरण उल्लाला के होते हैं। इस प्रकार इसमें सब मिलाकर कभी १५२ कभी १४८ मात्राएँ होती हैं। इसके ७१ भेद हैं।

९ दोहा—

दोहा में २४ मात्राएँ होती हैं। इसके सम चरणों में ११ मात्राएँ और विषम में १३ मात्राएँ होती हैं। अन्त में लघु होता है। इसके २४ भेद हैं।

प्रकरण के विस्तार के भय से इस पर अधिक विवेचन नहीं करते, विद्यार्थिगण इन्हें अध्ययन करके छन्दों के रूप से परिचय प्राप्त कर लें और इन्हें छन्दों की तालिका से छाँट लें।

परिशिष्ट २

छन्दों की प्रतीकानुक्रमणिका

अ

	नाम छन्द	अङ्क संख्या
अरिवृन्दन को रन खेतन मारिकै	सवैया	१ ७
अन्धनृपति के सुतन कहँ पद-पद कृत अपकार	दोहा	१ ६
अति खाँयँ मग हृद का बजत कल-हेम-घंटा जासु	रूपमाला	२ २९
अबला सरिस तुम सोक त्यागौ	रूपमाला	५ ३३

आ

आबाल सो मम वैर जो	हरिगीतिका	१ १
आरत हूँ विपुल पुकारत अनाथ	घनाक्षरी	१ ११
आधौ यदपि प्रसङ्ग सुनि	कुरण्डलिया	२ १३
आयसु पाय जबै द्रुपदी को	सवैया	२ २५
आयुधनि ज्वाल सौँ भरखौ है	घनाक्षरी	३ ७
आवहु द्रोनी पियारे इतै	सवैया	३ २९
आयत लोचन जा ुख-चन्द की	सवैया	४ १०
आयुध धारनि मैं यहि लौँ	सवैया	४ १२

परिशिष्ट

नाम छन्द अङ्क संख्या

इ

इन नैनन सुखदैन चपल

रोला २ २३

उ

उर फारि जिन मम अनुज को

रोला २ २८

ए

एकै सहोदर के गिरतै रन

सवैया ५ ७

अं

अंगराज पै क्रोधित हूँ अब लौं

सवैया ५ ३७

अंग महीपति गिरे तुमहूँ रन में

रोला ५ ३९

क

करत अवशा मूढ़ की

दोहा ३ ४३

करन-बधन-बिधु सुमिरि कै

दोहा ५ १९

करन-दुशासन-निधन सुनि

दोहा ६ ११

करन-रहित रथ पै चढ़्यो

दोहा ५ ११

कहत दुःख बस आज मातु

रोला ५ ३

कहँ यह तिय-जन-सुलभ

रोला २ ११

करि दुर्योधन महीपति को पक्षपात

घनाक्षरी ३ ५

कीचक बक किरमीर हिडिम्यहि

रोला ६ १८

कूल-कलिन्दजा ते रसकेलि मैं

सवैया १ २

जैश्री-संहार

	नाम छन्द	अङ्क	संख्या
कै गुरु-दच्छिना में प्रिय भीम	सवैया	३	९
कै आगे पाञ्चाल-मुत वृद्ध भीषमहि मारि	दोहा	२	४
कोऊ नहीं इनमौहि कुमार	सवैया	३	१०
कौच-विहीन कलेवर ते	सवैया	५	१
क्रोध कै कौरव-नायक के	सवैया	१	१५
क्रोध कै धुमावै रन चञ्चल प्रचण्ड गदा	घनाक्षरी	६	१३
क्रोध कै सारौ हन्यो रिपुवंश के	सवैया	६	४५

ख

खैच्यौ कर गहि केश मोर	रोला	५	३०
-----------------------	------	---	----

ग

गदा भिन्न सोवत मही	दोहा	५	३४
गिरे द्रोण गांगेय रण गिरे करन	दोहा	५	२३
गिरे द्रोण गांगेय के जापै	दोहा	५	१२
गुप्त प्रकट आपुहि अपर	दोहा	२	३
गृह-चरित्र, अरु सपन पुनि	दोहा	२	१५
गृह लाख में राखि जरायौ चह्यौ	सवैया	१	८

च

चढ़ि आये एकहि रथहि	दोहा	५	२५
चञ्चल या भुजदण्ड सों कोपि	सवैया	१	२१

नाम छन्द	अङ्क	संख्या
चाप लौं भौहैं चढ़ाई नहीं	सवैया	२ २०

छ

छाँड़ि समर को खेत मीच भय	रोला	३ ६
छिपौ मारंग जानत पङ्क में जे	रोला	६ २
छोरन सों जाके भुजबल अभिमानी देव	घनाक्षरी	६ ४२
छोड़े लगाम निरास हूँ घायल	रोला	५ १०

ज

जब सों धारयो अस्त्र परसु कुण्ठित	रोला	२ २
जनम्यो विधु के वर वश में तू	सवैया	६ ७
जब तैं लीन्ह्यो जन्म भूठ मुख ते	रोला	३ १५
जरासन्ध-उर सरसि के शोनित	दोहा	६ ४०
जाहि बिठावन को निज जंघ पै	सवैया	६ ३५
जाति की प्रीति गुनी मन में नहीं	सवैया	६ २०
जा सेनापति सङ्ग तुम कियौ	कुण्डलिया	३ १६
जा समै भीम सुयोधन में	सवैया	६ १६
जिन देख्यौ यह पाप तथा जिन	छप्पय	३ २४
जिन बल पाइ गन्यौ कछुहू न	घनाक्षरी	५ ५
जियत पाण्डुनन्दन सकल	दोहा	१ १८
जिनके युगल भुंजदण्ड परिघ प्रचण्ड	हरिगीतिका	६ २२

बेणी-संहार

	नाम छन्द	कृत्र	संख्या
जिमि मद-कलित करेनु दियो बन	रोला	४	३
जो कहूँ हिय हठ ठानि शत्रु	रोला	३	३६
जौ लौं न पांडव सरनि तीखनि	हरिगीतिका	३	४५
जाके देखत सुभट-बन्धु-बान्धव	रोला	४	११

भा

भूठी सुने जिनकी बतियाँ	सवैया	५	४२
------------------------	-------	---	----

ट

टरि न जाइ कहूँ सत्य हिये	रोला	१	२४
--------------------------	------	---	----

ड

डरत प्रतिज्ञा-भङ्ग सेां जो वर वीर	दोहा	६	६
-----------------------------------	------	---	---

त

तजि संसय धारै गदा	दोहा	४	४
तजि लाज को खेल्यो जुआ	सवैया	६	१७
तव असमञ्जस वचन सुनि	दोहा	६	१४
त्यागि दई रनभूमि में देह	सवैया	३	२२
तिनहूँ सौँ बल-नाथ जो तुम न बनाये जात	दोहा	३	२६
तुरत हते नर को मिले रुधिर मांस	दोहा	३	२
तुव सत पुत्रनि समरभूमि	रोला	५	२८
तुव भ्रात तनय वह अग्रज कान्ह को	सवैया	६	२७

नाम छन्द	अङ्क	संख्या
तेजहि धारनहार बन्धु दुख	रोला	३ २७
तो सुत नै अरि-वृन्द-बिनास की	सवैया	५ २७

द

दम्पति नेह नहीं बतियाँ	सवैया	२ १२
दिग्भूषन सत पच्छयुत	दोहा	१ ६
दीरघ कुञ्जर घटा विपुल	रोला	१ २७
दीरघ आयत आँखिन में	सवैया	२ २३
दीठि हरी दोऊ नैनन की	सवैया	५ १३
दुर्लभ हूँ है आजु सों, दियो	दोहा	६ २६
दूरि कै ज्ञात औ ज्ञान को भेद	सवैया	१ २३
देतो तोहि पठाय अवसि दुःशासन पाहीं	दोहा	५ ३२
देत क्रोध सो अरि-निधन	दोहा	१ १७
देखे बिना अपने लघु बन्धु को	सवैया	६ ३६
दै जल-अञ्जलि श्राद्ध में केतिक	दोहा	३ १८
दै अभय दान जयद्रथ को	सवैया	४ २
दोऊ निज प्रबल प्रचण्ड बाहु-दण्डन सों	घनाक्षरी	५ ३५
द्रौपदी को वह क्रोध-कृशानु	सवैया	६ ८

ध

धारत रुचिर चाप सिंचनी की रेख देह	घनाक्षरी	२ २७
----------------------------------	----------	------

चेणी-संहार

	नाम छन्द	अङ्क	संख्या
धर्म-महीप कही निहचै	सवैया	३	११
धर्म-नरेश की बात कहा	सवैया	२	२६
धरनी पर ताको सरीरहिं डारिकै	सवैया	६	३६
धारि संका जहाँ कोऊ एकान्त में बतराय	रूपमाला	६	३
धौल सुकोयन सों हूँ रही	सवैया	२	१६

न

नव नेह सौं गौरी निहारै सभै	सवैया	१	३
नरनाह वसुन्धरा पालै सदा	सवैया	६	४७
नितहि सुभासुभ स्वप्न ये	दोहा	२	१४
निज भुजबल को अमित अभिमान धरि	घनाक्षरी	३	३२
निपट कूर वह भीम भीम-बल-विक्रम-वारो	रोला	३	४६
निहत सुवन कुन्ती सहित	दोहा	५	४
निरखि तिन्हैं महि माहिँ	रोला	५	१८
नितहिं दुसह सोकज अनल	दोहा	५	२०
निज साखनि के अवरोधनि सों	सवैया	६	२६
निपट अस तहुँ सत्य सोहै	रूपमाला	३	४८
निहचै बलदेव वृकोदर मीचु को	सवैया	६	२८
निज बालपन तैं किये तैंने	रूपमाला	६	३८
नितहिं होत रन महन-सों	दोहा	३	१४

परिशिष्ट

नीके सकत न देखि यदपि ये

नाम छन्द अङ्क संख्या

रोला २ १

प

पथ-पान बीन्हो मातु को तुम

रूपमाला ५ ४१

पटुता गदा सङ्गर मैं सिगरी

सवैया ६ ४

परतिज्ञा निज तात नहिं

रोला ६ ३३

प्रबल पच्छ नृप वश करन

दोहा १ ६

प्रबल पवन तरु पातन सों

छप्पय २ १९

पाय विकास समै बगरे दल

सवैया २ ८

पाय अनादर अमित खेद लज्जा के मारे

रोला १ २६

पाण्डव को रन मारिके बन्धुन

सवैया ४ १३

प्यारो हमारौ दुसासन बन्धु

सवैया ४ ५

पाँचों भाइन माहिं तोहिं जासो

दोहा ६ १०

पिता सीस परसे समर धरि

कुरण्डलियां ३ २५

पुन्य सलिल जल-पूर्ण-कुम्भ

रोला ६ १२

प्रेम के बन्धु सों डीठिं लगाय कै

सवैया २ १८

प्रेरित प्रभञ्जन प्रबल सों जनु

हरिगीतिका ३ ४

ब

बरजै भ्रमरावलि मानै नहीं

सवैया १ १

बन्धु के आयसु जाने गह्यो कच

सवैया ३ ४७

वेणी-संहार

	नाम छन्द	अङ्क	संख्या
बन्धु दुशासन जीवन के	सवैया	४	६
बदलो सक्यों चुकाय नहिं	रोला	५	२
बन्धु गुरु नरनाहनि जूह	सवैया	६	५
बल्मीकि सत्यवती-तनय मुनिवर्य	रूपमाला	६	४४
बरुणावर्त जयन्त	सोरठा	१	१६
बिस्व को दहन काज तीखन मयूखन	घनाक्षरी	३	८

भ

भरथो दामिनी दुत सरिस	दोहा	१	१४
भीम पवन भंजन कियो तव रथ	दोहा	२	२४
भीषम महोदधि पार कै	हरिगीतिका	६	१
भीम सरीर सेां छूटी हुती	सवैया	६	२१
भूलहूँ भामिनि साँची कहौ	सवैया	२	६
भोग्यो सवै बिभव दबायो निज	घनाक्षरी	५	८
भीम-भुज-मन्दर-विलोडित सिन्धु	रूपमाला	६	६
भूप-सभा में दुसासन नीच	सवैया	६	४१

म

मम वियोग भय मानि कै	दोहा	३	१७
मम हिय को अभिलाष-नैन	रोला	५	२२
महि मण्डल जीति कियो बस भूपनि	सवैया	६	१९

नाम छन्द अङ्क संख्या		
महदादि कारण प्रकृति में	हरिगीतिका ६	४३
मानी धनी कुरराज महीपति	सवैया ४	१
मारथो अनुज जिन समर में	हरिगीतिका ४	८
मात-पिता दिग ते अबहीं	सवैया ४	१५
मारे हमारे बन्धु जिन मम देखते	हरिगीतिका ५	९
मातु को दूध पियो पहिले तुम	सवैया ६	३१
मिलत भोजन रुचिर जाँमैं	रूपमाला ३	१
मूँ दे विलोचन बैठे मही	सवैया ३	२३
मेदिनी को मण्डल कँपाय दिश दिश	घनाक्षरी २	१७
मेहीं में यह रहति निच ही	रोला २	१०
मो जीवत पितु के सँगहि या विधि	दोहा ३	३१
मो हित तजत शरीर लखि कोऊ	दोहा ५	१७

य

या कौरव-कुल-ज्वाल में	दोहा १	१६
यह जल-अञ्जलि जलज नील लोचन	रोला ६	३०
यह जलपत कटु वचन धारि	रोला ५	३१

र

रनयज्ञ-कर्ता बन्धु हम होता स्वयं	हरिगीतिका १	२५
रञ्जनीय भ्राता नितै	दोहा ४	७

वेणी-संहार

	नाम छन्द	अङ्क	संख्या
रन मारे गये वर वीरन की	सवैया	५	३६
रन जूझे मम प्रानप्रिय	दोहा	६	३४
राखती तापै सनेह घनो	सवैया	५	१५

ल

लहि नित निकट निवास बनत	रोला	१	२०
लाख-गृह आगि दै खिलैवे मैं कपट-द्यूत	घनाक्षरी	५	२६
लागत ही लखा-गेह में आगि	सवैया	६	२३
लाँघिबो तुम्हारौ अनुशासन है	घनाक्षरी	१	१२

व

वह तात सनेही तुम्हारे रहे	सवैया	३	३०
विरचित काव्य-प्रबन्ध	रोला	१	५
विधि वाम की विपरीत गति से	रूपमाला	५	४०

स

सुत नहिं वह वृषसेनतव	दोहा	४	१४
सुत घात को दीरघ दुःख हिलाय कै	सवैया	३	४०
सहसा क्रिये काजनि माहिं	सवैया	५	२१
सबदि धनञ्जय प्रानहर	दोहा	५	२४
सभा माहिं जाने गह्यो	कुण्डलिया	५	२६
सहसा जो सुरपुर मेयो	दोहा	६	३२

नाम छन्द	अङ्क	संख्या
सङ्गर में इन भूपनि सामुहें	सवैया	३ २१
संक्षेपहिं विस्तार सेां	दोहा	६ १५
सचिव अनुज सुत बन्धु युत	दोहा	२ ६
श्रवन-सुखद रिपु-निधन किन	दोहा	६ ४०
श्रवन-सुखद बतियाँ करन	दोहा	५ ३८
श्रवन सुधा-सम रुचिर	दोहा	१ ४
सावधान खेल आजु भाग्य तोपै	रोला	३ ४२
सिन्धु मथन सेां उठि मन्दर कन्दर	सार	१ २२
सिन्धु महीपहि पार्थसन	दोहा	३ २८
सुख सेां सेावौ रैन सुने	रोला	३ ३४
सुनिकै तुव कटु वचन तेहि	दोहा	३ ४१
श्रुति बुद्धि विलास सेां बन्धुन	सवैया	६ २५
सूत होहुँ वा सूत-सुत	दोहा	३ ३७
सेानित-आसव पान करन सेां	रोला	३ ३
सेाई यह भूमि अरि सेानित	घनाक्षरी	३ ३३
सेाचैां दुशासन केा कहा जेहि भीम	हरिगीतिका	५ १६

ह

हरये धरौ पग भूमि पै रम्भोर	हरिगीतिका	२ २१
हिम औ मकरन्द मिलै नत-उन्नत	सवैया	२ ७
हीन अरिन ते सन्धि केा	दोहा	५ ६

वेणी-संहार

	नाम छन्द	अङ्क	संख्या
रन मारे गये वर वीरन की	सवैया	५	३६
रन जूझे मम प्रानप्रिय	दोहा	६	३४
राखती तापै सनेह धनो	सवैया	५	१५

ल

लहि नित निकट निवास बनत	रोला	१	२०
लाख-गृह आगि दै खिलैवे मैं कपट-द्यूत	घनाक्षरी	५	२६
लागत ही लखा-गेह में आगि	सवैया	६	२३
लाँघिबो तुम्हारौ अनुशासन है	घनाक्षरी	१	१२

व

वह तात सनेही तुम्हारे रहे	सवैया	३	३०
विरचित काव्य-प्रबन्ध	रोला	१	५
विधि वाम की विपरीत गति से	रूपमाला	५	४०

स

सुत नहिं वह वृषसेनतव	दोहा	४	१४
सुत घात को दीरघ दुःख हिलाय कै	सवैया	३	४०
सहसा किये काजनि माहिं	सवैया	५	२१
सभदि धनञ्जय प्रानहर	दोहा	५	२४
सभा माहिं जाने गछो	कुरण्डलिया	५	२६
सहसा जो सुरपुर गये	दोहा	६	३२

	नाम छन्द	अङ्क	संख्या
सङ्गर में इन भूपनि सामुहें	सवैया	३	२१
संक्षेपहिं विस्तार सों	दोहा	६	१५
सचिव अनुज सुत बन्धु युत	दोहा	२	६
श्रवन-सुखद रिपु-निधन किन	दोहा	६	४०
श्रवन-सुखद बतियाँ करन	दोहा	५	३८
श्रवन सुधा-सम रुचिर	दोहा	१	४
सावधान खेल आजु भाग्य तोपै	रोला	३	४२
सिन्धु मथन सों उठि मन्दर कन्दर	सार	१	२२
सिन्धु महीपहि पार्थसन	दोहा	३	२८
सुख सों सेवौ रैन सुने	रोला	३	३४
सुनिकै तुव कटु वचन तेहि	दोहा	३	४१
श्रुति बुद्धि विलास सों बन्धुन	सवैया	६	२५
सूत होहुँ वा सूत-सुत	दोहा	३	३७
सोनिन-आसव पान करन सों	रोला	३	३
सेई यह भूमि अरि सोनिन	घनाक्षरी	३	३३
सोचैं दुशासन को कहा जेहि भीम	हरिगीतिका	५	१६

ह

हरये धरौ पग भूमि पै रम्भोर	हरिगीतिका	२	२१
हिम औ मकरन्द मिलै नत-उन्नत	सवैया	२	७
हीन अरिन ते सन्धि को	दोहा	५	६

वेणी-संहार

	नाम छन्द	अङ्क	संख्या
हे प्रिय दरसन करन अचल आनन्द	रोला	५	१४
है गुरु के गुरु शाप सेां कुण्डित	सवैया	३	३५
हे सुत बल्लभ तुमहिं हाय हम	रोला	३	१२
है धिक राज युधिष्ठिर के	सवैया	३	१३
है न जाइ जग माहिं कहूँ अपमान	रोला	३	१९
है कै रोग द्वेष दुख दारिद	घनाक्षरी	६	४६
होय सूर कायर चहै	कुण्डलिया	३	३८
हौं निरबल अथवा सबल	दोहा	३	३६
हैं ही नहीं राकस पिसाच बयताल भूत	घनाक्षरी	६	३७
हौ तुम तो गुनखानि महीपति	सवैया	३	४४
हौ जब लौं आयुध धरे औरनि के	दोहा	३	४६
हौ लघु-बन्धु हमारे लला	सवैया	६	२४
क्ष			
क्षत्र तेज अति उग्र वह	दोहा	१	१३
त्र			
त्रिभुवन-गुरु आचार्य जबहिं आयुध	रोला	३	२०

— —

परशिष्ट ३

शब्दार्थ-दीपिका

अश्रुविलुलित = नेत्रवारि से मिले हुए ।	अतथ्य वचन = झूठी बात ।
अधिक्षेप = अपमान करना ।	अरविन्द = कमल ।
अभ्युदयोचित = उन्नति के अनुकूल ।	अशनि-निर्घात = वज्रपात ।
अभ्युदयोचित = उन्नति के अनुकूल ।	अवशिष्ट = बचा हुआ ।
अग्रगण्य = आगे गिने जानेवाले ।	अभयदान = बेखटके कर देना ।
अवहेलना = उपेक्षा करना ।	अस्थि = हड्डी ।
अग्रज = (अग्र + ज) बड़ा भाई ।	अवधीर्णा = डाँटना ।
अनभिज्ञता = न जानना ।	अवतंस = उत्पन्न, कर्णभूषण ।
अध्वखेद = (अध्व + खेद) मार्गश्रम ।	अवृत = झूठ ।
अरि = वैरी ।	अथै गयौ = अस्त हो गया ।
अनुजीवी = सेषक, आश्रित ।	अप्रमेय = अनुमानातीत ।
अतंक = दबदबा ।	अनुमति = सलाह ।
अटवी = वन ।	अनुसरण = पीछा करना ।
अम्बा = माता ।	अभिनय = खेलना ।
	अनर्गल = असम्बद्ध, व्यर्थ ।

वेणी-संहार

अबला = स्त्री ।

अर्घ = पूजन और स्वागत का एक
विधान ।

अनियारी = नुकीली ।

अवनि = पृथ्वी ।

अघ = पाप ।

अपकार = बुराई ।

असन्धेय = सन्धि करने के अयोग्य ।

अविरल = घना ।

अन्नागार = आयुध-भाण्डार ।

अलौकिक = अपूर्व, लोकोत्तर ।

अक्षौहिणी = सेना की संख्या-
विशेष ।

अप्रतिहत = अनवरुद्ध ।

अनुहारि = समान ।

अवगाहन = स्नान करना ।

अमित = बहुत ।

अनल = अग्नि ।

आ

आलिंगन = भेटना ।

आरातिचक्र = शत्रु-समूह ।

आहुति = हवन के समय अग्नि में

डाला हुआ शाकल्य ।

आत्मश्लाघा = अपनी प्रशंसा
करना ।

आमरण = मरण-पर्यन्त ।

आसव = सुरा ।

आलवाल = थालहा।

आकर्ण = कान तक ।

अवर्तक = मेघों का वंश-विशेष ।

आलोक-मण्डल = आकाश ।

आलिन = सखियों को ।

आयुध = अस्त्र ।

आश्वासन = धैर्य ।

अल्पवयस्क = थोड़ी अवस्था का ।

उ

उद्भव = उत्पत्ति ।

उपालम्भ = उलाहना ।

उदासीनता = तटस्थता ।

उतावला = शीघ्रता करनेवाला ।

उद्विग्न = व्यस्त ।

उद्धत = उद्दण्ड ।

उरोज = वक्षोज, पयोधर ।

उनये = उगे हुए, बढ़े हुए ।

उपेक्षा = अवहेलना ।

उराहनो = उपालम्भ ।

उपचार = दवा लगाना, सेवा करना ।

उपहास = हँसी ।

उच्छ्रंग = गोद ।

उत्ताप = गर्मी ।

अं.

अंभोजिनी = कमलिनी ।

अंगनि = गात्रों में ।

अंक = गोद ।

अंशुमाला = किरणजाल ।

अँध्यार = अन्धकार ।

औ.

औचित्य = उचित होना, ठीक होना ।

ए

एकाकी = अकेले

क

कच = बाल ।

कबन्ध = रुँड, सिर से रहित शरीर ।

कलाप = समूह

करवाल = तलवार ।

कलिका = कली ।

कर्कशता = कठोरता ।

करेणु = हाथी ।

कवच (कौच) = सनाह ।

कर्णज्वरोत्पादनी = कानों के

फोड़नेवाली ।

कलेवर = शरीर ।

कनक = सेना ।

कलत्र = स्त्री ।

कटाक्ष = भ्रूविक्षेप ।

कङ्कपत्र = कङ्कयन्त्री का पर ।

कृपाण = खड्ग ।

कन्दर = गुफा, कंदरा, खोह ।

कृपाणानल = करवाल की अग्नि ।

काश-कुसुम = काँस के फूल ।

कालपृष्ठ = धनुष का नाम-विशेष ।

कामुक = धनुष ।

कानन = वन ।

कामना = अभिलाषा ।

वेणी-संहार

किंकिणी = छोटी-छोटी घण्टियाँ ।

खल = दुष्ट ।

कलुप्त = रँगा हुआ ।

ग

कुशानु = अग्नि ।

गवाक्ष = भरोखा ।

कुम्भ = मस्तक ।

गरल = विष ।

कुलटा = दुराचारिणी स्त्री ।

गज-तुरङ्ग-संकुलित = हाथी और

कुसुमित = फूलों से खिला हुआ ।

घोड़ों से युक्त ।

कुटुम्बी = कुल के लोग ।

गगन = आकाश ।

कुलाङ्गना = साध्वी स्त्री ।

गंडस्थल = कनपटी ।

कुब्जर = हाथी ।

गाण्डीव = अर्जुन का धनुष ।

कुण्टित = कुन्द ।

गाण्डीवधारी = अर्जुन ।

कूल = किनारा ।

गोत्र-क्षय-शङ्किता = वंश-विनाश की

केल = क्रीड़ा ।

सम्भावना करना ।

केशाम्बराकर्षण = बालों और वस्त्रों

घ

को खींचना ।

घानौ = मार डालना ।

कोकनद = कमल ।

घृत = घी

कोदण्ड = धनुष ।

च

क्रोध = रोष ।

चतुःशाला = बारहदी ।

क्रोध-कलित = रोष के कारण अरुण । चमू = सेना ।

क्रौंच = पक्षि-विशेष ।

चण्डनिःस्वान = भयंकर शब्द ।

ख

चाकरी = नौकरी ।

खद्योत = जुगमू ।

चामर = चँवर, चौर ।

चाप = धनुष ।

चाटुकार = खुशामदी ।

चेरे = दास ।

चापसिंचनी = प्रत्यञ्चा ।

ज

जलदनिस्वान = बादलों का गरजना ।

जलाञ्जलि = तर्पण, पानी देना ।

जलावगाहन = जल की थाह

लगाना ।

जंघ = जंघा, जाँघ ।

जाज्वल्यमान = प्रकाशमान, दह-

कता हुआ ।

जाह्नवी = गङ्गा ।

जूथ = झुण्ड, समूह ।

झ

झंझारी = सुराही, झंझर ।

झंझानिल = आँधो ।

त

तन = शरीर ।

तनोरुह = शरीर के बाल ।

तरुपात = वृक्ष के पत्ते ।

तनया = कन्या, लड़की ।

ती = स्त्री ।

तुषार = पाला, बर्फ, हिम ।

तूल = रूई ।

तूणीर = तर्कस ।

त्यो = और, वैसे ही ।

तृषा = प्यास ।

द

द्यूत = जुआ ।

दामिनी = बिजली ।

दारुण = भयङ्कर, घोर ।

दिङ्मण्डल = दिशाएँ ।

दिन-नायक = सूर्य ।

दिव्यवाणी = मीठी बोली, मनोहर

बोली ।

दिक् = दिशा ।

द्विरद = हाथी ।

दुष्कर = कठिन ।

दूर्वादिक = घास-फूस ।

दुरोफिनी = अमरी ।

दुर्विनत = उद्धत ।

वेणी-संहार

दुःखार्णव = दुख का समुद्र ।

द्रुम = झुण्ड ।

देदीप्यमान = प्रकाशमान् ।

ध

धरा = पृथ्वी ।

धैर्यच्युत = साहस-रहित ।

ध्रुव = निश्चित, अटल ।

धूमसिखा = धुँएँ का निकलना ।

न

नक्र = नाका, घड़ियाल ।

नलिनी = कमलिनी ।

नन्दन = सुख देनेवाला पुत्र ।

नरनाथ = राजा ।

न्यग्रोध = वटवृक्ष, बरगद ।

नरनाहन - राजाओं के ।

नेतृत्व = सेनापतित्व ।

नेपथ्य = नाटक का परदा ।

निसर्ग = स्वभाव ।

निहचै = अवश्य, निश्चय ।

निकषा = कसौटी ।

निषङ्ग = तर्कस, तूणीर ।

निधन = वध ।

निर्जित = जीता हुआ ।

निशाकर = चन्द्रमा ।

निष्कण्टक = बेखटके ।

निकुञ्जन = लतागुहों में ।

नीललोचन = नीले नेत्रोंवाले ।

निवातकवच = दैत्यों के वर्ग-विशेष

का नाम ।

निविड़ अन्धकार = घनी अंधियारी ।

निन्दक = बुराई करनेवाला ।

निर्गलित = गिरा हुआ ।

निर्घोष = धोर शब्द ।

निशित = तीक्ष्ण ।

प

परिजन = सेवक, दास ।

परिघ = अस्त्र-विशेष ।

परिश्रान्त = थका हुआ ।

परितोषिक = उपहार ।

पखारिहौं = धोऊँगा ।

पराभव = अनादर ।

पर्याकुल = घिरा हुआ ।

पटु = दत्त ।

पगघात = चरण-चिह्न ।

परिग्रह = ग्रहण करना, पकड़ना ।

पताका = झण्डा, ध्वजा ।

परिमल = सुगन्ध ।

परिकर = कमर, फेंटा ।

पदाति = पैदल ।

पथरानि = पथरा जाना ।

परिधानमुक्त = बिना वस्त्रों के ।

परणत = बदला हुआ, रूपान्तरित ।

परितीति = भरोसा, विश्वास ।

पथान = यात्रा ।

परित्राण = रक्षा ।

पट = वस्त्र ।

परिचारिका = दासी ।

प्रलय = कल्पान्त ।

पयोद = बादल ।

पङ्क = कीचड़ ।

पङ्कज = कमल ।

प्रमुख = मुख्य ।

प्रदीप्त = जलता हुआ ।

प्रवाद = लोकापवाद ।

प्रकोप = क्रोध ।

प्रहारि = आघात करके ।

प्रमत्त = मस्त ।

प्रच्छन्न = छिपा हुआ ।

प्रत्युत = बल्कि ।

प्रलाप = रोना ।

प्रवर = पूजा ।

प्रमाद = भूल ।

प्रगल्भ = दीठ ।

प्रभञ्जन = हवा, आँधी ।

प्रगल्भता = ठिठाई ।

प्रज्वलित = जलती हुई ।

प्रस्तावना = भूमिका ।

प्रतिबन्धक = शर्त ।

प्रतिकूल = विरुद्ध ।

प्रदर्शित = दिखलाये हुए ।

प्रतिकार = बदला, विरोध ।

प्रचारणा = चुनौती देना ।

पावस = वर्षा ऋतु ।

पादप = वृक्ष ।

चेणी-संहार

पादोदक = चरण-जल ।

पाणि = हाथ ।

पालनार्थ = रक्षा करने के लिए ।

पादाभिवादन = प्रणाम करना ।

पातक = पाप ।

पांचजन्य = शंख-विशेष का नाम ।

पारत = डालते हुए ।

प्राणान्त = मर जाना ।

प्राणोत्सर्ग = प्राण छोड़ देना ।

प्रांशुभुजा = दीर्घबाहु ।

पिनाक = शङ्कर के धनुष का नाम ।

पिंजर = शरीर की हड्डियाँ ।

पिङ्गल = लाल और पीला मिला

हुआ ।

पीवर = मोटा ।

पीतावशेष = पीने से बचा हुआ ।

पुरातन = पुराना ।

पुलकावलि = आनन्द, रोमराजि ।

पुण्डरीकाक्ष = कमलनयन, भगवान्

कृष्ण ।

पौरुष = बल, पुरुषार्थ ।

पौरुषाभिमानी = बल का अभिमान

रखनेवाला ।

प्रेरित = सञ्चालित ।

च

बलनाथ = सेनापति ।

बल पड़ना = भौंहे तन जाना ।

बृहस्पति = देवताओं के गुरु का नाम ।

बाहुदर्प = भुजबल ।

भ

भल्लकाख्य = भाला के आकार के ।

भग्नावशेष = टूटा-फूटा हुआ ।

भ्रमरावलि = भौंरे ।

भृकुटियाँ = भौंहे ।

भास्कर = सूर्य ।

भाग्यनिन्दा = प्रारब्ध को केसना ।

भुजपाश = बाहुबन्धन ।

भूलुज्जित = पृथ्वी पर लोटता हुआ

म

महापोत = बड़ा भारी जहाज़ ।

मुहूर्त = समय ।

मथि डारौं = मन्थन कर डालूँ ।	मूर्च्छित = संज्ञाहीन ।
मरुत्नन्दन = हनुमान्जी ।	मेद = चरबी ।
मधुसूदन = भगवान् कृष्ण ।	मेखला = करधनी ।
महोदधि = समुद्र ।	र
मत्त-मातङ्ग-मण्डल = मस्त हाथियों	रति = प्रेम ।
का समूह ।	रव = शब्द ।
मलिन्द = भौंरे ।	रघसि = रगड़ना ।
मज्जा = मेद, चरबी ।	रघसार्वार्ति = रगड़ती है ।
मग = रास्ता ।	रजःकरण = धूल ।
मयूख = किरण ।	रञ्चक = थोड़ा भी ।
मराल = हंस ।	रजनी = रात ।
मख = यक्ष ।	रविनन्दन = सूर्य का पुत्र, कर्ण ।
महिषी = रानी ।	रणदन्तता = युद्ध-निपुणता ।
मन्दभाग्य = हतभाग्य ।	रणाङ्गण = युद्धभूमि ।
मृगेन्द्र = सिंह ।	रक्ताक्त कर = खून से रँगे हाथ ।
मृगांकमूर्ति = चन्द्रमा ।	रक्तासवयान = खून पीना ।
मन्दाकिनी = गङ्गा ।	रावरे = आपके ।
मातुल = मामा ।	रिपु = शत्रु ।
माल्यवृन्द = मालाओं का समूह ।	रुधिर-रञ्जित = खून से रँगा हुआ ।
माद्रीनन्दन = नकुल, सहदेव ।	रोदन = विलाप ।
मांगलिक = कल्याणमय ।	रोषावेश = क्रोध में आ जाना ।

वेणी-संहार

ल

ललाम = सुन्दर ।
लङ्गर = बोझा ।
लखात = दिखलाना ।
लक्ष = निशाना ।
लांछित = अपराधित ।
लूम = पूँछ ।
लोभ्र = लोध ।
लोचन = नेत्र ।

व

वपु = शरीर ।
वनिता = स्त्री ।
वल्लरी = वेल ।
वृद्धाधम = दुष्ट बूढ़ा ।
वृन्द = समूह, यूथ ।
व्यथा = क्लेश ।
व्यथित = क्लेशार्त ।
वारि = पानी ।
वारांगना = वेश्या ।
वाहिनी = सेना ।
वायस = कौआ ।

वाम पद = बायाँ पैर ।

वाद्ययन्त्र = बाजा ।

वासव = इन्द्र ।

वामता = टेढ़ापन, विरुद्धता ।

वाचाल = वाग्मी, बातूनी ।

व्याध = बहेलिया, चिड़ीमार ।

व्यामोह = प्रमाद ।

विकृत = विकारयुक्त ।

विकीर्ण = खुली हुई, बिखरी हुई ।

विटप = वृक्ष ।

विस्मय = आश्चर्य ।

विदलित = खिली हुई ।

विघातक = मारनेवाला ।

विरधापन = बुढ़ापा ।

विदारिहौं = फाड़ूँ गा ।

विध्वंस = नाश ।

विडम्बना = परिहास ।

विरुदावलि = यशोगान ।

विशिख-शय्या = बाणों का बिछौना ।

विभ्रम = भूल ।

विरत = हटा हुआ, अलग ।

विचलाई = भगाकर, हटाकर ।

विशिखपुङ्ख = बाण में लगा पर ।

विकटवेषी = भयङ्कराकार ।

विशिख = बाण ।

विधिनास = विधाता का भय ।

विलोडित = मथा हुआ ।

विषम = तीक्ष्ण ।

विपिन = वन ।

विना क्षत खाये = बिना घाव लगे हुए ।

वीर-पुंगव = श्रेष्ठ योधा ।

वीभत्स = भयङ्कर, घृणोत्पादक ।

वेणी = चोटी ।

वैर-शोधन = बदला लेना ।

वयस (वैस) = अवस्था ।

श

शव = मृतक-शरीर ।

शल्य = बाण, मद्र-मरेश का नाम ।

श्रवणपर्यन्त = कान तक ।

श्राद्ध = पिण्डदानादिक ।

श्रुति = वेद ।

श्रेयस्कर = भला करनेवाला

शारदीय = शरद् ऋतु की ।

शेफालिका = कली-विशेष ।

शिविर = तम्बू, डेरा ।

शीतल-तरङ्ग-मिश्रित = ठण्ढी लहरों के सहित ।

शेष = बाक़ी, रहे-सहे ।

शोणित = रक्त ।

शोकापनोदन = दुःख दूर करना ।

स

समीरण = हवा ।

सन्नद्ध = तैयार ।

सलिल = पानी ।

सरोज = कमल ।

सदन = घर ।

सव्यसाची = अर्जुन ।

सद्यः = तुरन्त ।

सहोदर = भाई ।

समूलोन्मूलन = जड़ से उखाड़

डालना ।

वेणी-संहार

समक्ष = सामने ।

समीचीन = उचित ।

सरजाल = बाणों का समूह ।

समुत्कण्ठित = अभिलषित,

इच्छुक ।

सहेट = मिलने का गुप्त स्थान ।

सन्तापग्रस्त = खिन्न ।

समवयस्का = बराबर की अवस्था-
वाली ।

सत = अच्छा, सौ ।

सरासन = धनुष ।

सचिव = मन्त्री ।

सहस्ररश्मि = सूर्य ।

सरिता = नदी ।

सतच्छद = वृक्षविशेष ।

सम्पुट = बैधा हुआ दोना ।

सन्निकट = पास ।

समाधि = ध्यान-मग्न होना ।

समुदाय = समूह ।

स्तवन = स्तुति करना ।

स्पष्टाक्षर = साफ़ अक्षरों में ।

स्यन्दन = रथ ।

स्फुरण = फड़कना ।

सञ्चय = इकट्ठा करना ।

सम्भूत = उत्पन्न ।

संहार = मारना ।

सङ्गर = युद्ध ।

संशय = सन्देह ।

संघटन = इकट्ठा करना, एकत्रित
होना ।

सन्दिग्ध = सन्देह से भरा हुआ ।

सन्तप्त = खिन्न, दुःखित ।

सम्भ्रम = अचानक ।

संहारिहौं = मार डालूँगा ।

स्वाँस = साँस ।

सान्निध्य = निकटता ।

सिद्ध = सफल, मुनि, तपस्वी ।

सिकतामयी = बालुकापूर्ण ।

सुयश = कीर्ति ।

सुकृत = अच्छे काम ।

सुरेस = इन्द्र ।

स्नेहाद्रि = प्रेमपूर्ण ।

स्नेहयुक्त = प्रेमपूर्ण ।

सोमलता = वल्लरी-विशेष ।

ह

हर्ष = आनन्द ।

हलाहल = घोर विष ।

हस्तलाघव = हाथ की सफ़ाई ।

हास = कमी ।

हियो = हृदय, मन, चित्त ।

— —

